आचार्य विजयसेनसूरीश्वरजी कृत

सूक्तरत्नावली

(सह नन्दनमुनिकृत आलोचना)

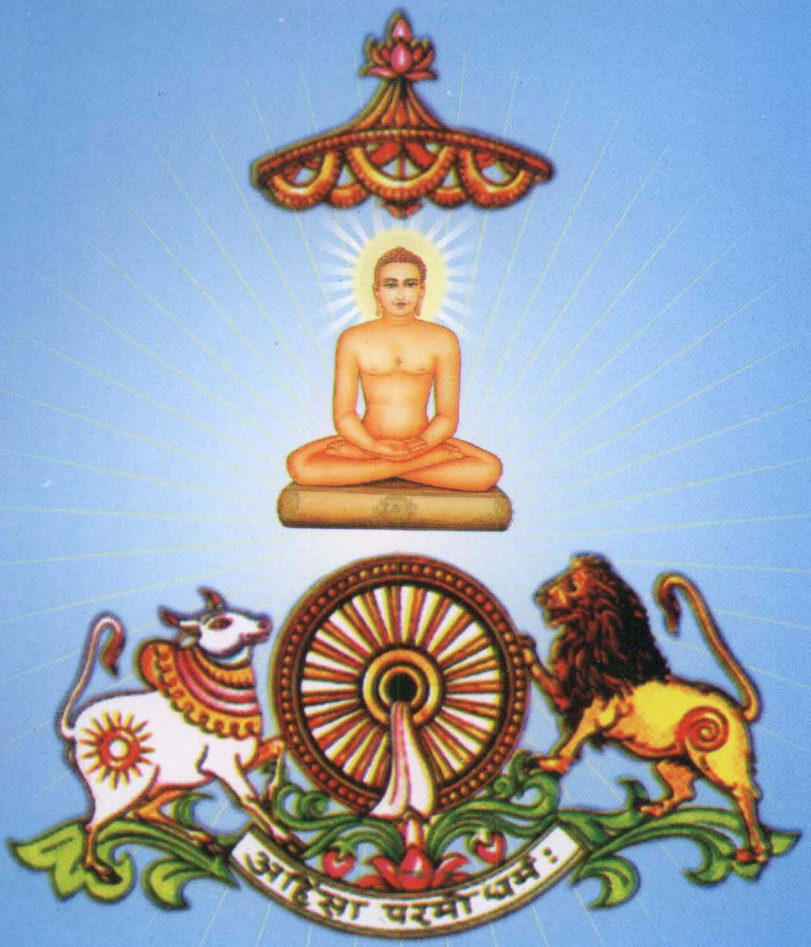

सम्प्रेरक
पू. सा. डॉ. प्रीतिदर्शनाश्रीजी

अनुवादक
साध्वीश्री रुचिदर्शनाश्रीजी

सम्पादक
डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक : प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

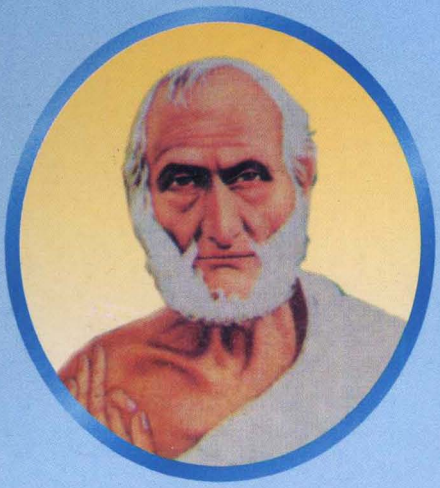

विश्वपूज्य श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

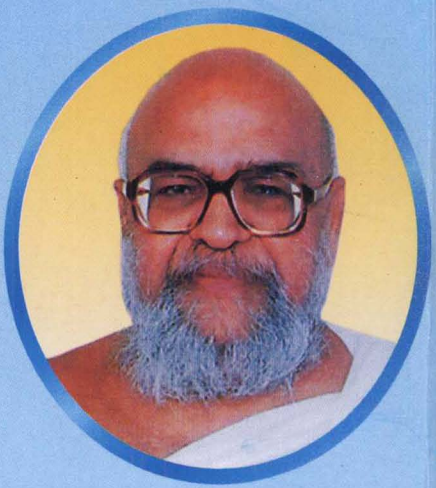

आ. श्री विजय जयन्तसेन सूरिजी म.सा.

समत्व साधिका परम पूज्य महाप्रभाश्रीजी म. सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य विजयसेनसूरीश्वरजीकृत

सूक्तरत्नावली

(सह नन्दनमुनिकृत आलोचना)

दिव्यकृपा

विश्वपूज्य श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

मंगलमय आशीर्वाद

आचार्य श्री जयन्तसेनसूरीश्वरजी

दिव्य आशीष

समत्व साधिका परम पूज्य महाप्रभाश्रीजी म.सा.

सम्प्रेरक

पूज्या साध्वी डॉ. प्रीतिदर्शना श्रीजी

अनुवादक

साध्वी श्री रुचिदर्शना श्रीजी

सम्पादक

डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक

प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकर्त्ता	:	श्री विजयसेनसूरीश्वरजी म.सा.
ग्रन्थनाम	:	सूक्तरत्नावली सहनन्दनमुनिकृत आलोचना
दिव्य कृपा	:	विश्वपूज्य श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
मंगलमय आशीर्वाद	:	आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा.
दिव्य आशीष	:	समत्व साधिका परम पूज्यामहाप्रभाश्रीजी म.सा.
सम्प्रेरक	:	पूज्या साध्वी डॉ. प्रीतिदर्शना श्रीजी
अनुवादक	:	साध्वी श्री रुचिदर्शनाश्रीजी
सम्पादक	:	डॉ. सागरमल जैन
प्रकाशक	:	प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड, शाजापुर (म.प्र.)
सुकृत सहयोगी	:	1) श्री त्रिस्तुतिक जैन श्री संघ, नयापुरा, उज्जैन (म.प्र.) 2) शा. माँगीलालजी एवं समस्त रतनपुरा बोहरा परिवार बेटा पोता - शा. पेराजमलजी प्रतापजी मोदरा (राज.) हालमुकाम-गुन्टूर (आ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ममाशीर्वचनम्

साहित्य सृजन परम्परा में हमारे जैनाचार्यों का जो योगदान रहा है वह अनिर्वचनीय है। अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उनमें अभी कई ग्रन्थ अप्रकाशित भी हैं। प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तक लिखित ग्रन्थों में योग, अध्यात्म, ज्योतिष, सामुद्रिक आदि अनेक विषयों पर निरूपित ग्रन्थों में कई ग्रन्थ अनुपलब्ध भी हैं। शोधकारों का विषय है कि वे ऐसे ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का अभिनन्दनीय प्रयास करें।

मुगल सम्राट् अकबर के प्रतिबोधक श्री हीरविजय सूरीश्वरजी म. के पट्टप्रभावक शिष्यरत्न आचार्यश्री विजयसेन सूरीश्वरजी म. ने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ अभी भी प्रकाश में नहीं आ पाई हैं।

मम समुदाय वर्तिनी साध्वीजी रुचिदर्शनाश्रीजी अल्प वयस्क होते हुए भी अध्ययन में पूर्ण दक्षता से संलग्न हैं, वहीं उनकी ज्ञानार्जन रुचि एवं अध्ययन परायणता सुन्दरतम है। अध्ययनशील साध्वीजी ने आचार्य विजयसेन सूरीश्वरजी म. लिखित 'सूक्त रत्नावली' ग्रन्थ का हिन्दीभाषा में अनुवाद कर सामान्य जन समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत कर श्रेष्ठ कार्य किया है।

मैं अपनी ओर से साध्वीजी के इस प्रयास की हृदय से सराहना करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ एवं उत्तरोत्तर ज्ञानार्जन करती अपने जीवन में समुन्नत पथ की ओर अग्रसर हों, ऐसा आशीर्वाद देता हूँ।

(आचार्यश्री विजय जयन्तसेन सूरि)

गुन्टूर
दिनांक 07.09.2008

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकथ्य

वस्तु का स्वरूप अनन्तधर्मात्मक है। उन अनन्त धर्मों को अभिव्यक्त करने के लिए अनन्त शब्दों की आवश्यकता होती है, किन्तु हमारे पास शब्द-कोष सीमित है। फिर भी संसार में कुछ व्यक्तित्व विलक्षण प्रतिभा से युक्त होते हैं, वे संकेतविधि के द्वारा अत्यन्त सीमित शब्दों में गहन एवं गम्भीर अर्थ को समेट लेते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'सूक्तरत्नावली' में भी ग्रन्थकार विजयसेनसूरीश्वर ने मात्र दो-दो पंक्ति के अनुष्टुप श्लोक के माध्यम से जीवन की सच्चाइयों को अभिव्यक्त किया है। प्राच्य विद्यापीठ में अध्ययन के दौरान मुझे इस महत्त्वपूर्ण कृति के अनुवाद का प्रशस्त अवसर प्राप्त हुआ। अनुवाद में संशोधन एवं सम्यक् अर्थसंयोजना का कार्य किया है, इसके सम्पादक विद्वद्मनीषी डॉ. सागरमल जैन ने, उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस अनुवाद के कार्य में प्रत्यक्ष परिश्रम भले ही मेरा दिखता हो, किन्तु इसके पीछे प्रेरणा और आशीर्वाद तो गुरुवर्य एवं गुरुणीवर्या का ही है। इस कृति के प्रकाशन के पुनीत अवसर पर उनका स्मरण करना मेरा अपना दायित्व है।

सर्वप्रथम तो मैं कृत्य-कृत्य हूँ विश्वपूज्य आचार्य राजेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा. की दिव्यकृपा की एवं अध्ययन हेतु सतत् प्रेरणा प्रदाता वर्तमान आचार्य देवेश श्रीमद्विजय जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. की अनुकम्पा और अनुशंसा की, जो इस प्रकाशन का सबसे महत्त्वपूर्ण सम्बल है। मैं आभारी हूँ, मातृहृदया पूज्या महाप्रभा श्रीजी म.सा. की, जो संन्यासमार्ग में मेरे प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। साथ ही मैं आभारी हूँ, पूज्या सरल स्वभाविनी मालवमणि सुसाध्वी श्री स्वयंप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या वात्सल्यप्रदात्री विद्वद्वर्या डॉ. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. पूज्या सरल हृदया कनकप्रभाश्रीजी म.सा., स्नेह सरिता विद्वद्वर्या डॉ. सुदर्शनाश्रीजी म.सा., जीवन निर्मात्री भगिनीवर्या श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी म.सा. जिनकी प्रेरणा मेरी संयम यात्रा एवं विद्योपासना का आधार है। मैं इन सभी के प्रति सादर सविनय नतमस्तक हूँ। अध्ययनरता श्रुतिदर्शनाश्रीजी का आत्मीय सहयोग इस अनुवाद के साथ जुड़ा हुआ है। अक्षर संयोजन के लिये अनिल श्रीवास्तव एवं मुद्रण हेतु आकृति ऑफसेट के प्रति भी हमारी सद्भावनाएँ। मेरी कृति को मूर्त्तरूप प्रदान करने वाले अर्थ सहयोगी श्री त्रिस्तुतिक जैन श्री संघ, नयापुरा, उज्जैन (म.प्र.) एवं शा. माँगीलाल जी समस्त रतनपुरा बोहरा परिवार बेटा पोता-शा. पेराजमलजी प्रताप जी, मोदरा (राज.) हाल निवासी-गुन्टूर (आ.प्र.) को भी साधुवाद।

– रुचिदर्शनाश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

जैन-साधना का लक्ष्य समभाव (सामायिक) की उपलब्धि है और समभाव की उपलब्धि हेतु स्वाध्याय और सत्साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। सत्साहित्य का स्वाध्याय मनुष्य का ऐसा मित्र है, जो अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों स्थितियों में उसका साथ निभाता है और उसका मार्गदर्शन कर उसके मानसिक विक्षोभों एवं तनावों को समाप्त करता है। ऐसे साहित्य के स्वाध्याय से व्यक्ति को सदैव ही आत्मतोष और आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति होती है; मानसिक तनावों से मुक्ति मिलती है। यह मानसिक शान्ति का अमोघ उपाय है।

स्वाध्याय का महत्त्व-

सत्साहित्य के स्वाध्याय का महत्त्व अतिप्राचीन काल से ही स्वीकृत रहा है। औपनिषदिक् चिन्तन में जब शिष्य अपनी शिक्षा पूर्ण करके गुरु के आश्रम से विदाई लेता था तो उसे दी जाने वाली अन्तिम शिक्षाओं में एक शिक्षा होती थी – 'स्वाध्यायान् मा प्रमदः' अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद मत करना। स्वाध्याय एक ऐसी वस्तु है जो गुरु की अनुपस्थिति में भी गुरु का कार्य करती है। स्वाध्याय से हम कोई-न-कोई मार्गदर्शन प्राप्त कर ही लेते हैं। महात्मा गाँधी कहा करते थे – 'जब भी मैं किसी कठिनाई में होता हूँ, मेरे सामने कोई जटिल समस्या होती है, जिसका निदान मुझे स्पष्ट रूप से प्रतीत नहीं होता है, मैं गीता-माता की गोद में चला जाता हूँ, वहाँ मुझे कोई-न-कोई समाधान अवश्य मिल जाता है।' यह सत्य है कि व्यक्ति कितने ही तनाव में क्यों न हो अगर वह ईमानदारी से सद्-ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है, तो उसे अपनी पीड़ा से मुक्ति का मार्ग अवश्य ही दिखाई देता है।

जैन परम्परा में जिसे मुक्ति कहा गया है, वह वस्तुतः राग-द्वेष से मुक्ति है, मानसिक तनावों से मुक्ति है, ऐसी मुक्ति के लिए पूर्व कर्म-संस्कारों का निर्जरण या क्षय आवश्यक माना गया है। निर्जरा का अर्थ है – मानसिक ग्रन्थियों को जर्जरित करना अर्थात् मन की राग-द्वेष, अहङ्कार आदि की गाँठों को खोलना। इसे ग्रन्थि भेद करना भी कहते हैं। निर्जरा एक साधना है। वस्तुतः निर्जरा तप की ही साधना से होती है। जैन परम्परा में तप-साधना के जो 12 भेद माने गये हैं; उनमें स्वाध्याय की गणना आन्तरिक तप के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार स्वाध्याय मुक्ति का मार्ग है। जैन-साधना का एक आवश्यक अंग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययनसूत्र में स्वाध्याय को आन्तरिक तप का एक प्रकार बताते हुए उसके पाँचों अंगों एवं उनकी उपलब्धियों की विस्तार से चर्चा की गयी है। बृहत्कल्पभाष्य में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि – **'नवि अत्थि न वि अ होही, सज्झाय समं तपो कम्म'** अर्थात् स्वाध्याय के समान दूसरा तप न अतीत में कोई था, न वर्तमान में है और न भविष्य में कोई होगा। इस प्रकार जैन परम्परा में स्वाध्याय को आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में विशेष महत्त्व दिया गया है। उत्तराध्ययन में कहा गया है कि स्वाध्याय से ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे समस्त दु:खों का क्षय हो जाता है। वस्तुत: स्वाध्याय ज्ञान प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। कहा भी है –

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
अन्नाण–मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं
एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥

तस्सेस मग्गो गुरु–विद्वसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झाय–एगन्तनिसेवणा य
सत्तुऽत्थसंचिन्तणया धिई य॥

—उत्त., 32/2-3

अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाश से, अज्ञान और मोह के परिहार से, राग-द्वेष के पूर्ण क्षय से-जीव एकान्त सुख-रूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

गुरुजनों की और वृद्धों की सेवा करना, अज्ञानी लोगों के सम्पर्क से दूर रहना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना, स्वाध्याय करना और धैर्य रखना, यही दु:खों से मुक्ति का उपाय है।

स्वाध्याय का अर्थ–

'स्वाध्याय' शब्द का सामान्य अर्थ है – स्व का अध्ययन। वाचस्पत्यम् में स्वाध्याय शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की गयी है – (1) स्व+अधि+ईण्, जिसका तात्पर्य है कि स्व का अध्ययन करना। दूसरे शब्दों में – स्वाध्याय आत्मानुभूति है, अपने अन्दर झाँक कर अपने आपको देखना है। वह स्वयं अपना अध्ययन है। मेरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि में अपने विचारों, वासनाओं व अनुभूतियों को जानने व समझने का प्रयत्न ही स्वाध्याय है। वस्तुत: वह अपनी आत्मा का अध्ययन ही है, आत्मा के दर्पण में अपने को देखना है। जब तक स्व का अध्ययन नहीं होगा, व्यक्ति अपनी वासनाओं एवं विकारों का द्रष्टा नहीं बनेगा, तब तक वह उन्हें दूर करने का प्रयत्न नहीं करेगा और जब तक वे दूर नहीं होंगे, तब तक आध्यात्मिक पवित्रता या आत्म-विशुद्धि सम्भव नहीं होगी और आत्म-विशुद्धि के बिना मुक्ति असम्भव है। यह एक सुस्पष्ट तथ्य है कि जो गृहिणी अपने घर की गन्दगी को देख पाती है, वह उसे दूर कर घर को स्वच्छ भी रख सकती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी मनोदैहिक विकृतियों को जान लेता है और उनके कारणों का निदान कर लेता है, वही सुयोग्य वैद्य के परामर्श से उनकी योग्य चिकित्सा करके अन्त में स्वास्थ्य लाभ करता है। यही बात हमारी आध्यात्मिक विकृतियों को दूर करने की प्रक्रिया में भी लागू होती है। जो व्यक्ति स्वयं अपने अन्दर झाँककर अपनी चैतसिक विकृतियों अर्थात् कषायों को जान लेता है, वही योग्य गुरु के सान्निध्य में उनका निराकरण करके आध्यात्मिक विशुद्धता को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार स्वाध्याय अर्थात् स्व का अध्ययन से, आत्म-विशुद्धि की एक अनुपम साधना सिद्ध होती है। हमें स्मरण होगा, स्वाध्याय का मूल अर्थ तो अपना अध्ययन ही है, स्वयं में झाँकना है। स्वयं को जानने और पहचानने की वृत्ति के अभाव से सूत्रों या ग्रन्थों के अध्ययन का कोई भी लाभ नहीं होता है। अन्तर्चक्षु के उन्मीलन के बिना ज्ञान का प्रकाश सार्थक नहीं बन पाता है। कहा भी है –

सुबहुंपि सुयमहीयं, किं काही ? चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्स कोडिवि ॥
अप्पंपि सुयमहीयं, पयासयं होई चरणजुत्तस्स।
इक्को वि जह पईवो, सचक्खुअस्सा पयासेई ॥

— आव.नि., 98-99

अर्थात् जैसे अन्धे व्यक्ति के लिये करोड़ों दीपकों का प्रकाश भी व्यर्थ है, किन्तु आँख वाले व्यक्ति के लिए एक ही दीपक का प्रकाश सार्थक होता है। उसी प्रकार जिसके अन्तश्चक्षु खुल गये हैं, जिसकी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो चुकी है, ऐसे आध्यात्मिक साधक के लिये स्वल्प अध्ययन भी लाभप्रद होता है, अन्यथा आत्म-विस्मृत व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए करोड़ों पदों का ज्ञान भी निरर्थक है। स्वाध्याय में अन्तश्चक्षु का खुलना – आत्म-द्रष्टा बनना, स्वयं में झाँकना पहली शर्त है, शास्त्र का पढ़ना या अध्ययन करना उसका दूसरा चरण है।

स्वाध्याय शब्द की दूसरी व्याख्या सु+आ+अधि+ईड – इस रूप में भी की गयी है। इस दृष्टि से स्वाध्याय की परिभाषा होती है – 'शोभनोऽध्याय: स्वाध्याय:' अर्थात् सत्साहित्य का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय की इन दोनों परिभाषाओं के आधार पर एक बात जो उभर कर सामने आती है वह यह कि सभी प्रकार का पठन-पाठन स्वाध्याय नहीं है। आत्म-विशुद्धि के लिये किया गया अपनी स्वकीय वृत्तियों, भावनाओं व वासनाओं अथवा विचारों का अध्ययन या निरीक्षण तथा ऐसे सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन, जो हमारी चैतसिक विकृतियों को समझने और उन्हें दूर करने में सहायक हों, वही स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है। विषय-वासनावर्द्धक, भोगाकांक्षाओं को उदीप्त करने वाले, चित्त को विचलित करने वाले और आध्यात्मिक शान्ति और समता को भंग करने वाले साहित्य का अध्ययन स्वाध्याय की कोटि में नहीं आता है। उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय की कोटि में आता है, जिनसे चित्तवृत्तियों की चंचलता कम होती हो, मन प्रशान्त होता हो और जीवन में सन्तोष की वृत्ति विकसित होती हो।

स्वाध्याय का स्वरूप-

स्वभाव के अन्तर्गत कौन-सी प्रवृत्तियाँ आती हैं, इनका विश्लेषण जैन परम्परा में विस्तार से किया गया है। स्वाध्याय के पाँच अंग माने गये हैं – 1. वाचना, 2. प्रतिपृच्छना, 3. परावर्तना, 4. अनुप्रेक्षा और 5. धर्मकथा।

1. गुरु के सान्निध्य के पठन-पाठन एवं अध्ययन ही वाचना के अर्थ में गृहीत है।
2. प्रतिपृच्छना का अर्थ है पठित या पढ़े जाने वाले ग्रन्थ के अर्थबोध में सन्देह आदि की निवृत्ति हेतु जिज्ञासावृत्ति से या विषय के स्पष्टीकरण निमित्त प्रश्न कर-उत्तर प्राप्त करना।
3. पूर्व पठित ग्रन्थ की पुनरावृत्ति या पारायण करना परावर्तना है।
4. पूर्व पठित विषय के सन्दर्भ में चिन्तन-मनन करना अनुप्रेक्षा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. इसी प्रकार अध्ययन के माध्यम से जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसे दूसरों को प्रदान करना या धर्मोपदेश देना धर्मकथा है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना है कि स्वाध्याय के क्षेत्र में इन पाँचों अवस्थाओं का एक क्रम है। इनमें प्रथम स्थान वाचना का है। अध्ययन किए गए विषय के स्पष्ट बोध के लिये प्रश्नोत्तर के माध्यम से शंका का निवारण करना – इसका क्रम दूसरा है; क्योंकि जब तक अध्ययन नहीं होगा, तब तक शंका आदि नहीं होंगे। अध्ययन किये गये विषय के स्थिरीकरण के लिये उसका पारायण आवश्यक है। इससे एक ओर स्मृति सुदृढ होती है तो दूसरी ओर क्रमश: अर्थबोध में स्पष्टता का विकास होता है। इसके पश्चात् अनुप्रेक्षा या चिन्तन का क्रम आता है। चिन्तन के माध्यम से व्यक्ति पठित विषय को न केवल स्थिर करता है, अपितु वह उसके अर्थबोध की गहराई में जाकर स्वत: की अनुभूति के स्तर पर उसे समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार चिन्तन एवं मनन के द्वारा जब विषय स्पष्ट हो जाता है, तब ही व्यक्ति को धर्मोपदेश या अध्ययन का अधिकार मिलता है।

स्वाध्याय के लाभ–

उत्तराध्ययनसूत्र में यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि स्वाध्याय से जीव को क्या लाभ है? इसके उत्तर में कहा गया है कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणकर्म का क्षय होता है। दूसरे शब्दों में आत्मा मिथ्याज्ञान का आचरण दूर कर सम्यक्-ज्ञान का अर्जन करता है। स्वाध्याय के इस सामान्य लाभ की चर्चा के साथ उत्तराध्ययनसूत्र में स्वाध्याय के पाँचों अंगों-वाचना, पृच्छना, धर्मकथा आदि के अपने-अपने क्या लाभ होते हैं- इसकी भी चर्चा की गयी है, जो निम्न रूप में पायी जाती है -

भन्ते ! वाचना (अध्ययन-अध्यापन) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

वाचना से जीव कर्मों की निर्जरा करता है, श्रुतज्ञान की आशातना के दोष से दूर रहने वाला वह तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करता है – गणधरों के समान जिज्ञासु शिष्यों को श्रुत प्रदान करता है। तीर्थ-धर्म का अवलम्बन लेकर कर्मों की महानिर्जरा करता है और महापर्यवसान (संसार का अन्त) करता है।

भन्ते ! प्रतिपृच्छना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपृच्छना (पूर्वपठित शास्त्र के सम्बन्ध में शंकानिवृत्ति के लिए प्रश्न करना) से जीव सूत्र, अर्थ और तदुभय – दोनों से सम्बन्धित कांक्षामोहनीय (संशय) का निराकरण करता है।

भन्ते ! परावर्तना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

परावर्तना से अर्थात् पठित पाठ के पुनरावर्तन से व्यंजन (शब्द-पाठ) स्थिर होता है और जीव पदानुसारिता आदि व्यंजना-लब्धि को प्राप्त होता है।

भन्ते ! अनुप्रेक्षा से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

अनुप्रेक्षा से अर्थात् सूत्रार्थ के चिन्तन-मनन से जीव आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि सात कर्मों की प्रकृतियों के प्रगाढ़ बन्धन को शिथिल करता है, उनकी दीर्घकालीन स्थिति को अल्पकालीन करता है, उनके तीव्र रसानुभाव को मन्द करता है, साथ ही बहुकर्म-प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों में परिवर्तित करता है, आयुष्यकर्म का बन्ध कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता है, असातावेदनीय-कर्म का पुन: पुन: उपचय नहीं करता है, जो संसार अटवी अनादि एवं अनन्त है, दीर्घमार्ग से युक्त है, जिसके नरकादि गतिरूप चार अन्त (अवयव) हैं, उसे शीघ्र ही पार करता है।

भन्ते ! धर्मकथा (धर्मोपदेश) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

धर्मकथा से जीव कर्मों की निर्जरा करता है और प्रवचन (शासन एवं सिद्धान्त) की प्रभावना करता है। प्रवचन की प्रभावना करने वाला जीव भविष्य में शुभ फल देने वाले पुण्य कर्मों का बन्ध करता है।[1]

इसी प्रकार स्थानाङ्गसूत्र में भी शास्त्राध्ययन के क्या लाभ हैं ? इसकी चर्चा उपलब्ध होती है। इसमें कहा गया है कि सूत्र की वाचना के 5 लाभ हैं – 1. वाचना से श्रुत का संग्रह होता है अर्थात् यदि अध्ययन का क्रम बना रहे तो ज्ञान की वह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहती है। 2. शास्त्राध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति से शिष्य का हित होता है, क्योंकि वह उसके ज्ञान प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है।

1. उत्तराध्ययनसूत्र, 29/20-24.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. शास्त्राध्ययन अध्यापन की प्रवृत्ति बनी रहने से ज्ञानावरण-कर्म की निर्जरा होती है अर्थात् अज्ञान का नाश होता है। 4. अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति के जीवित रहने से उसके विस्मृत होने की सम्भावना नहीं रहती है। 5. जब श्रुत स्थिर रहता है तो उसकी अविच्छिन्न परम्परा चलती रहती है।

स्वाध्याय का प्रयोजन-

स्थानाङ्गसूत्र में स्वाध्याय क्यों करना चाहिए इसकी चर्चा उपलब्ध होती है। इसमें यह बताया गया है कि स्वाध्याय के निम्न पाँच प्रयोजन होने चाहिए –

1. ज्ञान की प्राप्ति के लिये, 2. सम्यक्-ज्ञान की प्राप्ति के लिए, 3. सदाचरण में प्रवृत्ति के हेतु, 4. दुराग्रहों और अज्ञान का विमोचन करने के लिए, 5. यथार्थ का बोध करने के लिए या यथा अवस्थित भावों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए।

आचार्य अकलंक ने तत्त्वार्थराजवार्तिक (9/25) में स्वाध्याय के निम्न पाँच प्रयोजनों की भी चर्चा की है –

1. बुद्धि की निर्मलता, 2. प्रशस्त मनोभावों की प्राप्ति, 3. जिनशासन की रक्षा, 4. संशय की निवृत्ति, 5. परिवादियों की शंका का निरसन, तप-त्याग की वृद्धि और अतिचार (दोषों) की शुद्धि।

स्वाध्याय का साधक जीवन में स्थान-

स्वाध्याय का जैन परम्परा में कितना महत्त्व रहा है, इस सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ न कहकर उत्तराध्ययनसूत्र के माध्यम से ही अपनी बात को स्पष्ट करूँगा। उसमें मुनि की जीवनचर्या की चर्चा करते हुए कहा गया है –

दिवसस्स चउरो भागे कुज्जा भिक्खू वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा दिणभागेसु चउसु वि॥

पढमं पोरिसिं सज्झायं बीयं झाणं झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं पुणो चउत्थीए सज्झायं॥

रत्तिं पि चउरो भागे भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा राइभाएसु चउसु वि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमं पोरिसि सज्झायं बीजं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खं तु चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं॥

–उत्त., 26/11, 12, 17, 18

मुनि दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान करे, तीसरे में भिक्षाचर्या एवं दैहिक आवश्यकता की निवृत्ति का कार्य करे। पुनः चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करे। इसी प्रकार रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा व चौथे में पुनः स्वाध्याय का निर्देश है। इस प्रकार मुनि प्रतिदिन चार प्रहर अर्थात् 12 घण्टे स्वाध्याय में रत रहे, दूसरे शब्दों में साधक जीवन का आधा भाग स्वाध्याय के लिये नियत था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन परम्परा में स्वाध्याय की महत्ता प्राचीनकाल से ही सुस्थापित रही, क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा व्यक्ति के अज्ञान का निवारण तथा आध्यात्मिक विशुद्धि सम्भव थी।

सत्साहित्य के अध्ययन की दिशाएँ–

सत्साहित्य के पठन के रूप में स्वाध्याय की क्या उपयोगिता है ? यह सुस्पष्ट है। वस्तुतः सत्साहित्य का अध्ययन व्यक्ति की जीवनदृष्टि को ही बदल देता है। ऐसे अनेक लोग हैं, जिनकी सत्साहित्य के अध्ययन से जीवन की दिशा ही बदल गयी। स्वाध्याय एक ऐसा माध्यम है, जो एकान्त के क्षणों में हमें अकेलापन महसूस नहीं होने देता और एक सच्चे मित्र की भाँति सदैव साथ देता है और मार्गदर्शन करता है।

वर्तमान युग में यद्यपि लोगों में पढ़ने-पढ़ाने की रुचि विकसित हुई है, किन्तु हमारे पठन की विषय-वस्तु सम्यक् नहीं है। आज के व्यक्ति के पठन-पाठन का मुख्य विषय पत्र-पत्रिकाएँ हैं। इनमें मुख्य रूप से वे ही पत्रिकाएँ अधिक पसन्द की जा रही हैं, जो वासनाओं को उभारने वाली तथा जीवन के विद्रूपित पक्ष को यथार्थ के नाम पर प्रकट करने वाली हैं। आज समाज में नैतिक मूल्यों का जो पतन हो रहा है उसका कारण हमारे प्रसार माध्यम भी हैं। इन माध्यमों में पत्र-पत्रिकाएँ तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन प्रमुख हैं। आज स्थिति ऐसी है कि ये सभी अपहरण, बलात्कार, गबन, डकैती, चोरी, हत्या इन सबकी सूचनाओं से भरे पड़े होते हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम उनके पढ़ने और देखने में अधिक रस लेते हैं। इनके दर्शन और प्रदर्शन से हमारी जीवनदृष्टि ही विकृत हो चुकी है, आज सच्चरित्र व्यक्तियों एवं उनके जीवन वृत्तान्तों की सामान्य रूप से इन माध्यमों के द्वारा उपेक्षा की जाती है। अत: नैतिक मूल्यों और सदाचार से हमारी आस्था उठती जा रही है।

इस विकृत परिस्थिति में यदि मनुष्य के चरित्र को उठाना है और उसे सन्मार्ग एवं नैतिकता की ओर प्रेरित करना है, तो हमें अपने अध्ययन की दृष्टि को बदलना होगा। आज साहित्य के नाम पर जो भी है, वह पठनीय है, ऐसा नहीं है। आज यह आवश्यक है कि सत्साहित्य का प्रसारण हो और लोगों में उसके अध्ययन की अभिरुचि जागृत हो।

सत्साहित्य और सूक्ति-

सत्साहित्य की विविध विधाओं में उपदेशात्मक गाथाओं और सूक्तियों का अपना महत्त्व है। ये गाथाएँ या सूक्तियाँ अति संक्षेप में गहन तथ्यों को प्रकाशित करने में समर्थ होती हैं। इनके माध्यम से अल्प स्वाध्याय से भी व्यक्ति उन सारभूत तथ्यों को पा लेता है, जो उसके जीवन के विकास एवं मूल्यनिष्ठा में सहायक होते हैं। यदि व्यक्ति नियमित रूप से सत्साहित्य की पाँच गाथाओं या श्लोकों का भी पठन एवं चिन्तन करे, तो उसके जीवन की दिशा बदल सकती है। कहा भी है –

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटन लगे, घाव करे गम्भीर॥

प्रस्तुत कृति 'सूक्तिरत्नावली' भी ऐसी ही एक कृति है, जिसमें उदात्त जीवन मूल्यों का प्रस्तुतीकरण हुआ है। आज मानवीय सभ्यता के विकास का कोई अच्छा माध्यम हो सकता है, तो वह सत्साहित्य का पठन-पाठन है। इसी से मानव जाति में उदात्त जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकती है।

किन्तु आज सबसे प्रमुख कठिनाई यह है कि हमारा सत्साहित्य मूलत: संस्कृत, प्राकृत और पाली भाषा में निबद्ध है और जन सामान्य इन भाषाओं को नहीं जानता है। इसलिए उसका हिन्दी, अंग्रेजी या अन्य लोकभाषाओं में अनुवाद आवश्यक है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर साध्वी रुचिदर्शनाश्रीजी ने आचार्य विजयसेन द्वारा उचित सूक्तिरत्नावली का यह हिन्दी अनुवाद किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्तरत्नावली के लेखक

16वीं एवं 17वीं सदी में अनेक प्रभावक जैन आचार्य हुए, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से मुगल बादशाहों को प्रभावित किया था, उनमें एक विजयसेन सूरि भी थे। विजयसेन सूरि के व्यक्तिव का निर्माण उनके गुरु हीरविजयजी ने किया था। जैनधर्म के प्रचार में विजयसेनसूरिहीरविजयजी के सबल सहायक थे एवं सफल उत्तराधिकारी थे। बादशाह अकबर को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर जैन धर्म के प्रति उसकी आस्था को सुदृढ़ करने का तथा हीरविजयजी की ख्याति को अधिक विस्तृत करने का श्रेय विजयसेनसूरि को ही है। हीरविजयजी के गुजरात पदार्पण के बाद बादशाह अकबर का एक सन्देश उनके पट्टशिष्य विजयसेनसूरि के पास पहुँचा, जिसमें विजयसेन सूरि को अकबर के दरबार में पहुँचने का निमन्त्रण था। वे लाहौर पहुँचे, उनकी अध्यात्ममयी वाणी को सुनकर अकबर प्रसन्न हुआ और इस अवसर पर विजयसेनसूरि को सवाई हीरजी की उपाधि प्रदान की गयी। विजयसेन सूरि वाद्यविद्या में भी निपुण थे। अकबर के दरबार में उन्होंने अनेक शास्त्रचर्चाओं में भाग लेकर जैन दर्शन की कीर्तिपताका फहराई थी। विजयसेनसूरि के जीवन में ऐसी कई विशेषताएँ थीं। हीरविजयजी के स्वर्गवास के बाद वे तपागच्छ के नायक बने और उन्होंने अपने गच्छ का संचालन सफलतापूर्वक किया। वे अच्छे लेखक एवं एक प्रभावक आचार्य थे। साथ ही वे गुरु के प्रति विशेष आस्थाशील थे।

विजयसेनसूरि के गुरु तपागच्छीय आचार्य हीरविजय थे। हीरविजय जी के गुरु विजयदानसूरि थे। विजयसेनसूरि के शिष्य परिवार में विद्याविजय, नन्दीविजय आदि प्रमुख थे। विजयसेन सूरि ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने शिष्य विद्याविजयजी की नियुक्ति की थी और उनका नाम विजयदेव रखा था।

विजयसेनसूरि का स्वर्गवास वि.सं. 1672 में हुआ था। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत कृति में विजयसेनसूरि ने लेखक के रूप में अपने नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रस्तुत कृति के 500वें श्लोक में विजयसेनसूरि ने अपने नाम का स्पष्ट निर्देश किया है तथा कृति का रचनाकाल वि.सं. 1647

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया है। ऐसा लगता है कि उनके पशचात् भी इस कृति में कुछ श्लोक जोड दिये गये हैं कृतिकार अपनी रचना को 'पाँच सौवें' श्लोक में समाप्त करता है, उसके पश्चात् के 11 श्लोक अन्य किसी ने उसमें जोड़े होंगे ऐसा लगता है। विजयसेन सूरि तपागच्छ की विमलशाखा से सम्बन्धित थे, सूक्तरत्नावली के अलावा उनकी अन्य कौन–सी रचनाएँ थीं, इस सम्बन्ध में हमें कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। फिर भी इस कृति के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे एक विद्वान् आचार्य रहे हैं, उनकी विद्वता के कारण ही सम्राट् अकबर ने उन्हें मान दिया था।

इस प्रकार एक श्रेष्ठ विद्वान् की श्रेषृकृति के अनुवादपूर्वक प्रकाशन का यह जो अनुमोदनीय कार्य हुआ है, उस हेतु मैं साध्वी रुचिदर्शनाश्रीजी को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

– डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्तरत्नावली

विबुधानन्दजननीं, गुरोर्वाचमुपास्महे ।
या रसेव रसै रम्या, मंगलोत्सवकारिणी ।। 1।।

विद्वानों को आनंद प्रदान करने वाली गुरुदेव की वाणी की हम उपासना करते है। पृथ्वी के समान अनेक रसो से युक्त वह वाणी सुंदर और मंगलमय आनन्दोत्सव कराने वाली है।

वचोभिर्नीतिनिष्यन्द,–कन्दकादम्बिनीनिभैः ।
ददमो व्याख्याजुषां शिक्षां, मुखाम्भोजरवित्विषम् ।।2।

जिनका मुख कमल सूर्य की कान्ति के सामन है और जिनके नीति से युक्त वचन अमृत जल की वर्षा करने वाले बादलों के समूह के समान है उन वचनों द्वारा व्याख्याकारों की शिक्षा को हम प्रदान करते हैं।

भावसारस्ययुक्तानि, सूक्तानि प्रतिकुर्महे ।
रविपादैरिवाम्भोजं, यैः सभोल्लासभाग् भवेत् ।। 3।।

यहाँ प्रत्येक युक्ति भावपूर्ण एवं सार से युक्त बनाई गई है। जैसे सूर्य की किरणों से कमल का विकास होता है। उसी तरह इन सूक्तियों से सभा भी उल्लास की अधिकारिणी होगी।

विनेन्दुनेव रजनी, वाणी श्रवणहारिणी ।
दृष्टान्तेन विना स्वान्ते, विस्मयं वितनोति न ।। 4।।

कर्ण को आकृष्ट करने वाली वाणी भी दृष्टान्त के बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तःकरण में आश्चर्य कर विस्तार नहीं करती हैं। जैसे चन्द्रमाँ के बिना रात्रि शोभा नही देती है।

दृश्यते सदसद्वस्तु , यैर्भास्करकरैरिव।
दृष्टान्तास्तुष्टये सन्तु , काव्यालंकारकारिणः।। 5।।

जिस प्रकार सूर्य की किरणों द्वारा सत् एवं असत् वस्तु भिन्न–भिन्न दिखलायी देती है, उसी प्रकार अलंकारिकों के दृष्टान्त सत् एवं असत् वस्तु का दर्शन अलग–अलग कर देते हैं।

अतश्चित्तचमत्कार,–मकराकरचन्दिकाम्।
भावयुक्तेषु सूक्तेषु , ब्रूमो दृष्टान्तपद्धतिम्।। 6।।

अतः चित्त को चमत्कृत करने वाली समुद्र मे चन्द्रमाँ के समान भाव से युक्त सूक्तियों में दृष्टान्त पद्धति को हम कहते हैं।

भवेत्तु गात्मनां संपद्, विपद्यपि पटीयसी।
पत्रपाते पलाशानां, किं न स्यात् कुसुमोद्गमः? ।।7।।

विपत्ति में भी उच्चआत्मा की संपत् (बुद्धि–रुपी धन) अत्यन्त पटु (चातुर्यपूर्ण) हो जाती है। क्या पलाश (खाँखरा का वृक्ष) के पत्ते गिर जाने पर भी उसमें फूल नहीं खिलते है ? अर्थात् उस स्थिति में भी उसमें पुष्पोद्गम हो जाता है।

गुणदोषकृते स्थाना,–स्थाने तेजस्विता स्थिता।
दर्पणे मुखवीक्षायै, खंगे प्राणप्रणाशकृत्।। 8।।

बुरे स्थान के प्रभाव से महान व्यक्तियों के गुण भी दोष बन जाते हैं जैसे पक्षी दर्पण में मुख देखकर अपने प्राणों का नाश कर लेता है।

पदे पदेऽधिगम्यन्ते, पापभाजो न चेतरे।
भूयांसो वायसाः सन्ति, स्तोका यच्चाषपक्षिणः।। 9।।

पापी व्यक्ति तो पग–पग पर मिल जाते हैं, सज्जन नहीं जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौए तो बहुत होते है। किंतु चाषपक्षी थोड़े होते हैं।

अपि तेजस्विनं दौःस्थ्ये, त्यजन्ति निजका अपि।
न भानुर्भानुभिर्मुक्तः, किमस्तसमये सखे ! ।। 10।।

तेजस्वी व्यक्ति को भी दुर्भाग्य में उसके स्वजन त्याग देते है। हे सखि ! सूर्य भी अस्त समय में क्या अपनी किरणों से मुक्त नही होता है ?

ज्योतिष्मानपि सच्छिदैः, संगतोऽनर्थहेतवे।
मंचकान्तरिता दीप,—प्रभा पुण्यप्रणाशिनी।। 11।।

प्रकाशवान व्यक्ति भी दोषयुक्त व्यक्तियों के संसर्गवश अनर्थ का कारण बन जाता है। शय्या के नीचे गई हुई दीपक की ज्योति पुण्य का नाश करने वाली हो जाती है।

मलिनोऽपि श्रियं याति, महस्विमिलनादलम्।
सम्पर्कान्नान्जनं भाति, किं दृशां हरिणीदृशाम्।। 12।।

महस्वी व्यक्ति के मिलने से मलिन व्यक्ति भी कल्याण को प्राप्त करता है। क्या काजल के सम्पर्क से दृष्टि मृगनयनी की सुंदरता नहीं प्राप्त करती है ?

पराभूतोऽपि पुण्यात्मा, न स्वभावं विमुंचति।
तोयमुष्णीकृतं कामं, शीततां पुनरेति यत्।। 13।।

असफल होने पर भी पुण्यात्मा व्यक्ति अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। जैसे अत्यन्त गर्म किया गया पानी फिर से शीतलता को प्राप्त हो जाता है।

महोत्सवे च जायन्ते, पापभाजामभूतयः।
नापत्राः किं वसन्तेऽपि, करीरतरवोऽभवन् ?।। 14।।

महोत्सव होने पर भी पापी व्यक्ति अप्रसन्न रहते हैं। जैसे वसंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋतु होने पर भी क्या करीर का वृक्ष पत्र विहीन नहीं होता है ?

नीचसंगेऽपि तेजस्वी, नैर्मल्यं भृशमश्नुते।
किमभूद् भस्मलिप्तेऽपि, दर्पवृद्धिर्न दर्पणे।। 15।।

नीच व्यक्ति का संग होने पर भी तेजस्वी व्यक्ति की निर्मलता तो अधिक बढ़ती है। क्या दर्पण के भस्म (राख) से लिप्त होने पर भी उसके तेज में वृद्धि नही होती है ? अर्थात् अवश्य होती है।

बिभर्ति, भृशमुल्लासं, सद्वृत्तः पीडितोऽपि हि।
किं नाऽभून्मार्दवं भूरि–वह्नौ मुक्तेऽपि पर्पटे ?।। 16।।

सद्वृत्ति वाले व्यक्ति पीड़ित होने पर भी हृदय में अत्यधिक उल्लास धारण करते है। क्या पर्पट के अग्नि में छोड़े जाने पर वह अधिक मृदु नहीं होता है ?

सेव्यः स्यान्नार्थिसार्थानां, महानपि धनैर्विना।
सेव्यते पुष्पपूर्णोऽपि, पलाशः षट्पदैर्न यत्।। 17।।

धन के बिना महान् व्यक्ति भी इच्छुक लोगों द्वारा सेव्य नहीं होता हैं। जैसे (पत्रविहीन) पलाश का वृक्ष पुष्प से पूर्ण होने पर भी भँवरों द्वारा सेव्य नहीं होता है।

हन्त ! हन्ति तमोवृत्ति–र्माहात्म्यं महतामपि।
अभवत् प्रथमः पक्षः, श्यामः शशिनि सत्यपि।। 18।।

तमोवृत्ति महान व्यक्तियों की महानता का भी नाश कर देती है, जैसे प्रथम पक्ष में चन्द्रमाँ की चाँदनी उज्ज्वल होते हुए भी कालिमा को प्राप्त करती है।

सतामपि बलात्काराः, सुकृते न च दुष्कृते।
घृतं भुङ्क्ते बलादश्व,–स्तृणान्यत्ति स्वयं च यत्।।19।।

सज्जन व्यक्ति विवशता होने पर भी अच्छे कार्य ही करते हैं, बुरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य नहीं करते। जैसे अश्व विवशता से ही घी खाता है, वैसे वह स्वयं तो सदैव तृण ही खाता है।

वासरास्ते तु निःसाराः, ये यान्ति सुकृतं विना।
विनाङ्कबिन्दवः किं स्युः, संख्यासौभाग्यशालिनः ?।। 20।।

सुकृत कार्य के बिना जो दिन व्यतीत होते हैं वे निस्सार (व्यर्थ) हैं। जैसे अंक कै बिना बिंदुओं का क्या मूल्य है, संख्या ही उनका सौभाग्य है।

भवन्ति संगताः सद्भिः, कर्कशा अप्यकर्कशाः।
किं चन्द्रकान्तश्चन्द्रांशु संश्लिष्टो न जलं जहौ ?।। 21।।

सज्जन व्यक्तियों की संगति से क्रूर व्यक्ति भी कोमल हो जाता है क्या चन्द्रकान्त मणि चंद्र की किरणों से मिलकर पानी नहीं छोड़ती? अर्थात् छोड़ती है।

स्वोऽपि संजायते दौःस्थ्ये, पराभूतेर्निबन्धनम्।
यत्प्रदीपप्रणाशाय, सहायोऽपि समीरणः।। 22।।

दरिद्रता एवं असफलता की अवस्था मे व्यक्ति के स्वजन भी उसको दुःख पहुँचाने वाले होते है। जैसे सहायता देने वाली हवा दीपक के कमजोर हो जाने पर उसके नाश का कारण बनती है।

दोषोऽपि गुणसंपत्ति,–मश्नुते वस्तुसंगतः।
यन्निन्द्यमपि काठिन्यं, कुचयोरजनि श्रिये।। 23।।

परिस्थिति के प्रभाव से दोष भी गुण रूप में परिणित हो जाते हैं। जैसे कठोरता निन्दनीय होने पर भी कभी–कभी श्रेयस्कर मानी जाती है – जैसे नारी के संदर्भ मे स्तनों की कठोरता अच्छी मानी जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोषं विशेषतः स्थाना,–ऽभावाद्याति गुणः सखे !।
न निन्द्या स्तनयोर्जज्ञे, नम्रताऽभिमताऽपि किम्?।।24।।

हे सखि ! प्रतिकूल स्थिति मे गुण भी दोष रूप हो जाते हैं। जैसे नम्रता निंदनीय नहीं होते हुए भी स्त्री के स्तनों के संदर्भ मे निन्दनीय मानी जाती है।

गते तेजसि सौभाग्य,–हानिर्ज्योतिष्मतामपि।
यन्निर्वाणः शमीगर्भो, रक्षेयमिति कीर्त्यते।। 25।।

तेजस्वी व्यक्ति का तेज चले जाने पर सौभाग्य की भी हानि हो जाती है। जैसे शमीवृक्ष के भीतर अग्नि बुझ जाने पर भी "उसकी रक्षा करना चाहिये", ऐसा कहा जाता है।

प्रायः पापेषु पापानां, प्रीतिपीनं भवेन्मनः।
पिचुमन्दतरुष्वेव, वायसानां रतिर्यतः।। 26।।

प्रायः पापी व्यक्तियों का मन पापों मे ही प्रसन्न रहना है। जैसे कौओं की अभिरुचि (निकृष्ट) पिचुमन्द वृक्ष पर ही होती हैं।

प्रायशस्तनुजन्मानो,–ऽनुयान्ति पितरं प्रति।
धूमाज्जाते हि जीमूते, कलितः कालिमा न किम्?।।27।।

पुत्र जन्म से ही प्रायः पिता का अनुसरण करता है। क्या धुँऐ से उत्पन्न बादल कालिमा से युक्त नहीं होते ?

नेशाः कर्तुं वयं वाचां, गोचरं गुणगौरवम्।
यत् सच्छिद्रोऽपि मुक्तौघः, कण्ठे लुठति यद्वशात्।।28।।

गुणों के गौरव का वर्णन करने में हमारी वाणी समर्थ नहीं है। मोतियो का समूह (माला) छिद्रयुक्त होने पर ही गले में धारण किये जाने पर नेत्रों को आनन्द प्रदान करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मकृत्यकृते लोकै, –र्नीचोऽपि बहु मन्यते।
धान्यानां रक्षणाद् रक्षा, यद्यत्नेन विधीयते।।29।।

संसार में स्वार्थ होने पर नीच व्यक्ति भी बहुत सम्मान पाते हैं। जैसे धान की रक्षा के लिए राख को भी यत्न से विधिपूर्वक रखते है।

सतां यत्रापदः, प्रायः, पापानां तत्र संपदः।
मुद्रिताक्षेषु लोकेषु, यद् घूकानां दृशः स्मिताः।।30।।

प्रायः जहाँ सज्जन व्यक्तियों को आपत्ति होती है वहाँ पापियों को सम्पत्ति होती है। जैसे संसार की आँखे बंद हो जाने पर (रात्रि मे सभी सो जाने पर) ही उल्लुओं की दृष्टि प्रसन्न होती है।

मानितोऽप्यपकाराय, स्यादवश्यं दुराशयः।
किं मूर्ध्नि स्नेहनाशाय, नारोपित(:) खलः खलु ? ।।31।।

सम्मानित व्यक्ति की दुर्भावना भी अवश्य उसके अहित के लिए होती है। क्या दुर्जन व्यक्तियों की सिर पर आरोपित की हुई दुष्टता स्नेह के नाश के लिए नहीं होती है ?

नोपैति विकृतिं कामं, पराभूतोऽपि सज्जनः।
यन्मर्दितोऽपि कर्पूरो, न दौर्गन्ध्यमुपेयिवान्।। 32।।

सज्जन व्यक्ति के असफल होने पर भी विकृति प्राप्त नहीं होती है। जैसे कपूर के मसले जाने पर भी वह सुगन्ध नहीं छोड़ता है।

विपत्तावपि माहात्म्यं, महतां भृशमेधते।
सौरभं काकतुण्डस्य, किमु दाहेऽपि नाऽभवत् ? ।।33।।

विपत्ति में महान् व्यक्तियों की महानता अधिक बढ़ जाती है क्या काकतुण्ड को जलाने पर उसकी सौरभ नहीं बढ़ती है ? अर्थात् बढ़ जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तोकोऽपि गुणिसंपर्कः, श्रेयसे भूयसे भवेत्।
लवणेन किमल्पेन, स्वादु नान्नमजायत ?।। 34।।

थोड़ा सा गुण–सम्पर्क भी कल्याण के लिए होता है जैसे थोड़े से नमक से भी क्या अन्न का स्वाद उत्पन्न नहीं होता?

भवन्ति परसंपत्तौ, पुण्यात्मानः सदाशयाः।
नभोर्नैमल्यमालोक्य, शरद्यम्भोऽभवच्छुभम्।। 35।।

पुण्यात्मा व्यक्ति दूसरों की सम्पत्ति में भी अच्छे आशय वाले होते है। जैसे नभ की निर्मलता को देखकर शरद ऋतु में पानी स्वच्छ हो जाता है।

पापात्मसंगमेऽपि स्यात्, ख्यातिरेव महात्मनाम्।
चित्रेषु न्यस्ता शोभायै, किं रेखाऽजनि नान्जनी ? ।।36।।

दुष्ट व्यक्तियों के संसर्ग में भी पुण्यवान् व्यक्तियों को ख्याति प्राप्त हो जाती है। क्या चित्र में खिंची काजल की रेखा शोभा प्राप्त नहीं करती है ?

अन्यदेशगतिर्न्याय्या, महोहानौ मन(ह)स्विनाम्।
न किं द्वीपान्तरं प्राप्त,–स्त्विषां नाशे त्विषांपतिः?।। 37।।

बुद्धिमान् व्यक्ति अत्यधिक हानि होने पर अन्य देश चले जाते है। जैसे किरणों के नाश होने पर क्या सूर्य द्वीपान्तर को नहीं जाता?

लघीयानपि वाल्लंभ्यं, समेति समये सखे !।
आदेया भोजनप्रान्ते, शलाका तृणमय्यपि।। 38।।

हे सखि ! छोटे लोगों को भी प्रेम से रखना चाहिये। अवसर पर वह भी काम आता है। जैसे भोजन के उपरान्त तृण की शलाका भी आदर योग्य होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खण्डीकृतोऽपि पापात्मा, पापान्नैव निवर्तते।
शिरोहीनोऽपि किं राहु,—र्ग्रसते न सुधाकरम् ?।।39।।

असफल होने पर भी पापी व्यक्ति पाप से निवृत्त नहीं होता है। क्या शीशहीन राहु चन्द्रमाँ को ग्रसित नहीं करता है ?

बालं दृष्ट्वाऽपि दुष्टानां, दयोदेति हृदि ध्रुवम्।
ग्रस्यते किं द्वितीयायाः, शत्रुणा राहुणा शशी ? ।।40।।

बालक को देखकर दुष्ट व्यक्तियों के हृदय में भी दया आ जाती है। जैसे राहु शत्रु होते हुए भी क्या द्वितीया के चन्द्रमाँ को ग्रसित करता है ? अर्थात् नहीं करता है।

अभाग्ये सत्यनर्थाय, सतां संगेऽपि जायते।
नालिकेरजलं जज्ञे, कर्पूरमिलनाद् विषम्।। 41।।

दुर्भाग्य होने पर भी सज्जन व्यक्तियों की संगति भी अनर्थ के लिए होती है। नारियल के पानी मे कपूर मिलाने से विष हो जाता है।

विरोधोऽपि भवेद् भूत्यै, कलावद्भिः समं सखे !।
दीयते काञ्चनं चन्द्र,—ग्रासात्तमसि वीक्षिते।। 42।।

कलावान् व्यक्ति का विरोध होने पर भी वह निष्पक्ष कल्याण के लिए ही कार्य करता है। चन्द्रमाँ (राहु से) ग्रसित करने वाले राहु को भी प्रकाश देता है।

कलावानपि जिह्मात्मा, बहुभिर्बहु मन्यते।
किमु लोकैर्द्वितीयाया, नमश्चके न चन्द्रमाः ?।। 43।।

कलावान् कुटिल आत्मा भी बहुत लोगो द्वारा अत्यधिक मान प्राप्त करता है। क्या संसार के द्वारा द्वितीया के चन्द्रमाँ को नमस्कार नहीं किया जाता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अश्व(स्व)कोऽपि गुणैर्गाढं, स्यात्सभाजनभाजनम्।
आरोप्यते नृपैर्मूर्ध्नि, वनोत्पन्नोऽपि चन्दनः।। 44।।

कोई भी गुणों से युक्त व्यक्ति सभाजनों का सेव्य होता है। जैसे वन में उत्पन्न होने पर भी चन्दन राजा द्वारा सिर पर लगाया जाता है।

पापधीर्द्रुतमभ्येति, बहूपायैश्च धार्मधीः।
वस्त्रे स्यात् कालिमा सद्यः, शोणिमा भूरिभिर्दिनैः।।45।।

पाप बुद्धि शीघ्र निकट आ जाती है। धर्म बुद्धि बहुत उपाय से आती है। जैसे वस्त्र पर कालिमा शीघ्र आती है लालिमा बहुत दिनों में आती है।

संपत् पापात्मनां प्रायः पापैरेवोपभुज्यते।
भोज्यं बलिभुजामेव, फलं निम्बतरोरभूत्।। 46।।

पापी लोगों की सम्पत्ति प्रायः पाप कार्य में ही उपभुक्त होती है। जैसे नीम वृक्ष के फल का भोजन कौएँ ही करते हैं।

भोग्यं भाग्यवतामेव, संचितं तद्धनैर्धनम्।
परैरादीयते नूनं, मक्षिकामेलितं मधु।। 47।।

किसी के द्वारा संचित किये गये धन का भाग्यवान व्यक्ति ही भोग करता है। जैसे मधुमक्खी से प्राप्त मधु निश्चय ही अन्यों द्वारा सेवित होता है।

का क्षतिर्यदि नाऽसेवि, तुंगात्मा मलिनात्मभिः ?।
का हानिर्हेमपुष्पस्य, मुक्तस्य मधुपैरभूत् ?।। 48।।

उच्च आत्माओं की सेवा मलिन आत्माओं द्वारा न हो तो उनको क्या क्षति (नुकसान) ? स्वर्ण पुष्प के मोती भँवरो द्वारा सेवित न हो तो क्या हानि ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचानां वचनं चारु, प्रस्तावे जल्पतां सताम्।
प्रीतिकृत् प्रस्थितानां हि, वामं गर्दभगर्दितम्।। 49।।

सज्जन व्यक्तियों के बोलने के अवसर पर नीच व्यक्तियों का वचन भी सुंदर होता है। जैसे प्रस्थान वालों की बाँई ओर गधे की आवाज प्रीतिकर होती है।

लघोरपि वचो मान्यं, समये स्याद् महात्मनाम्।
प्रस्थितैर्वामदुर्गायाः, शब्दः श्रेयानुदीरितः।। 50।।

महान् आत्माओं के द्वारा अवसर पर छोटे व्यक्तियों का वचन भी मान्य होता है। जैसे प्रस्थान के अवसर पर बाँई और दुर्गा पक्षी के शब्द कल्याणकारी कहे गये हैं।

स्थानभ्रष्टोऽपि शिष्टात्मा, लभेन्मानमनर्गलम्।
खानेश्च्युतो मणिर्भूमु,—न्मूर्धानमधिरोहति।। 51।।

पद के नष्ट होने पर भी शिष्ट व्यक्ति मान प्राप्त करता है। जैसे खान से च्युत् होने पर मणि राजा के सिर पर धारण की जाती है।

मध्ये मेधाविनां मातृ,—मुखानां मानमर्हति।
कोकिलान्तर्गताः काकाः, कोकिला एव यद्वशात्।।52।।

बुद्धिमान् लोगों के बीच मूर्ख लोग भी सम्मान के योग्य हो जाते हैं। जैसे कोयलों के बीच कौआ भी कोयल जैसा ही मान पाता है।

न मौनं वाग्मिनां शस्तं, वाक्कलाकुशलात्मनाम्।
अकूजन् कोकिलो लौकैः, काकोऽयमिति गीयते।।53।।

बोलने की कला में प्रशंसित कुशल व्यक्ति हो या अकुशल हो दोनों ही मौन नहीं रहते है। संसार मे कोयल भी बोलती है और कौए भी बोलते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पीयानप्यसत्संगः, स्यादनर्थाय भूयसे।
यवनैरेकशो भुक्तः, स्यादाजन्मान्वयाद्बहिः।। 54।।

दुःसंगति कितनी भी अल्प हो, अनर्थ के लिए ही होती है। जैसे मुस्लिमों के साथ एक बार भी भोजन करने पर आजन्म के लिए जाति बहिष्कृत कर दिया जाता है।

विकारं नैति जीवान्तं, कष्टमारोपितोऽपि सन्।
यत्तापितमपि स्वर्णं, वर्णं धत्ते मनोरमम्।। 55।।

दुःखावस्था में भी सज्जन व्यक्ति विकृति को प्राप्त नहीं होता है। अग्नि मे तपाये जाने पर भी सोना सुंदर स्वरुप को प्राप्त करता है।

न करोति नरः पापमधीताऽल्पश्रुतोऽपि सन्।
यद् भणन् रामरामेति, न कीरः पललालसः।। 56।।

अल्प ज्ञान होने पर भी व्यक्ति पाप नहीं करता है। जैसे– राम–राम कहता हुआ पोपट मांस लोलुप नहीं होता है।

वसन्नपि गुणिषु पापो, न वेत्ति गुणिनां गुणान्।
न तिष्ठन्नुदके भेको, गन्धं वेत्ति सरोरुहाम्।। 57।।

पापी व्यक्ति गुणीजनों के साथ रहते हुए भी उनके गुणों को नहीं जान पाता हैं। मेंढक पानी में रहते हुए भी कमल की सौरभ को नहीं जानता है।

महस्विमिलनान्मन्दा, अपि स्युर्दुःसहाः सखे !।
जलं ज्वलनसंपृक्तं, दुःसहं ददृशे न कैः ?।। 58।।

हे सखि ! महस्वी व्यक्ति के मिलने से मूर्ख व्यक्ति भी असह्य हो जाता है। क्या अग्नि के मिलने से पानी दुस्सह्य नही दिखाई देता ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परतः संपदं प्राप्य, सोत्कर्षा नीचगामिनः।
लब्धतोयाः पयोवाहा,–दुस्तराः सरितो न किम् ?।।59।।

दूसरों से सम्पत्ति प्राप्त होने पर नीचगमन करने वाले व्यक्ति को उत्कर्ष प्राप्त होता है किंतु वह उपयोगी नही बन सकता। जैसे नदी (नीचगामी होकर) समुद्र के पानी को प्राप्त कर क्या अपारता को प्राप्त नहीं करती ? (किंतु वह पीने योग्य नहीं रहती है।)

न पदं संपदां प्रायः, कुलोत्पन्नोऽपि दुर्मनाः।
अन्तर्वक्रोऽब्धिसूः शंखो, दृष्टो भिक्षाकृते भ्रमन्।। 60।।

श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न होने पर भी दुष्ट लोगों को प्रायः सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती है। पानी में उत्पन्न होने वाला शंख भी वक्र होने पर भिक्षा के लिए भ्रमण करता दिखाई देता हैं।

भवेद्वस्तुविशेषेण, सुकृते दुष्कृते च धीः।
ध्यानधीरक्षमालायां, प्रहारेच्छा च कार्मुके।। 61।।

किसी वस्तु विशेष के संयोग वश मानव की बुद्धि सुकर्म अथवा दुष्कर्म में लग जाती है। अक्षमाला को देखकर ध्यान में बुद्धि लग जाती है। तथा धनुष के सम्पर्क के कारण मारने की बुद्धि बन जाती है।

वपुःशेषोऽप्यपुण्यात्मा, स्वभावं न विमुंचति।
जहाति जिह्यतां रज्जु,–र्ज्वलिताऽपि न जातुचित्।।62।।

दुर्जन व्यक्ति केवल शरीर शेष रहने (सब कुछ चले जाने) पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। रस्सी जल जाने पर भी अपनी बट (कुटिलता) को नहीं छोड़ती है।

सतां नोपप्लवाय स्यु,–र्द्विजिह्वा मिलिता अपि।
नैषि संगाद् भुजंगानां, गरलं चन्दनद्रुमः।। 63।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो जीभ वाले (चुगलखोर व्यक्ति) मिल कर भी सज्जन व्यक्ति में विकृति (मानसिक हलचल) उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। अपने मूल में सर्पो के रहने पर भी चन्दन का वृक्ष गरलत्व की इच्छा नहीं करता है।

निजकार्याय दुष्टोऽपि, महद्भिर्बहु मन्यते।
दाहकार्यपि सप्तार्चि,–रिन्धनार्थं गवेष्यते।। 64।।

स्वयं के कार्यो के लिए महान व्यक्तियों के द्वारा दुष्ट व्यक्ति भी बहुत माना जाता है। जैसे दाहकार्य होने पर अग्नि ईन्धन की खोज करती है।

कुप्रसिद्धिः कुसंगेन, तत्क्षणान्महतामपि।
महेशो विषसान्निध्यात्, कण्ठेकालोऽयमीरितः।। 65।।

महान् व्यक्ति की भी कुसंगति के कारण अपकीर्ति होती है। जैसे शंकर को विष के संग से कण्ठेकाल कहा जाता है।

न सत्संस्तवसौभाग्यं, गदितुं गुरुरप्यलम्।
तन्तुभिः सुमनःसंगा,–ल्लब्धं स्वाहाभुजां शिरः।। 66।।

सज्जनपुरुष (महात्माओं के) के गुण गौरव का सुन्दर वर्णन करने में गुरु भी समर्थ नहीं हो सकता है। पुष्प के संयोग के कारण सूत्र (तन्तु) द्वारा विद्वानों के स्कन्ध पर विराजने का योग बन जाता है।

निःसारे वस्तुनि प्रायो, भवेदाडम्बरो महान्।
कुसुम्भे रक्तिमा यादृग्, घुसृणे न च तादृशी।। 67।।

प्रायः अनुपयोगी वस्तु भी बहुत चमक दमक वाली होती है जैसे कुसुम्भ में जैसी लालिमा होती है वैसी केसर में नहीं होती है।

क्षीयतेऽभ्युदयेऽन्येषां, तेजस्तेजस्विनामपि।
नोदये पद्मिनीबन्धोः, किं दीपाः क्षीणदीप्तयः ?।।68।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजस्वी व्यक्ति के तेज का नाश होने पर अन्य व्यक्तियों का उदय होता है। सूर्य का तेज खत्म होने पर (अस्त होने पर) क्या चन्द्र का उदय नहीं होता है ?

पात्रे शुद्धात्मने वित्तं, दत्तं स्वल्पमपि श्रिये।
दत्ते स्निग्धानि दुग्धानि, यद् गवां चारितं तृणम्।।69।।

सुपात्र मे दिया गया थोड़ा दान भी शुद्ध आत्मा के लिए कल्याणकारी होता है। गाय चारा खाकर भी घी और दूध देती है।

स्वल्पसत्त्वेष्वपि स्वेषु, वृद्धिः सत्स्वेव निश्चितम्।
उद्गमो यज्जनैर्दृष्टः, सतुषेष्वेव शालिषु।। 70।।

स्वयं में रहा हुआ अल्प सत्व भी निश्चित ही स्वयं की सज्जनता की वृद्धि करता है। तुष में रहा हुआ शालि (चावल) वृद्धि को प्राप्त करते हुए देखा जाता है।

सिद्धिं सृजन्ति कार्याणां, स्मितास्या एव साक्षराः।
लेखा उन्मुद्रिता एव, जायन्ते कार्यकारिणः।। 71।।

प्रसन्न मुख एवं विद्वान व्यक्ति ही कार्यों की सिद्धि (सफलता) का सृजन करते हैं। अधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर युक्त अभिलेख ही सार्थक माने जाते हैं।

उपकारः सतां स्थान,–विशेषाद् गुणदोषकृत्।
लोके घूके रवेर्भास,–स्तेजसे चाऽप्यतेजसे।। 72।।

सज्जन व्यक्तियों द्वारा किया गया उपकार स्थान (पात्र) विशेष से गुण और दोष बन जाता है। जैसे सूर्य का प्रकाश संसार में प्रकाश करने वाला होता है और उल्लू के लिए अंधकार हो जाता है।

भवन्ति महतां प्रायः, संपदो न विनापदम्।
पत्रपातं विना किं स्याद्, भूरुहां पल्लवोद्गमः?।।73।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायः महान् व्यक्तियों को भी बिना आपत्ति के सम्पदा नहीं मिलती है। क्या वृक्षों में पत्रपतन बिना (बिना पत्ते गिरे) पुनः नये पतों का आगम होता है। अर्थात् नहीं होता है।

महद्भ्यः खेदितेभ्योऽपि, प्रादुर्भवति सौहृदम्।
प्रादुरासीन्न किं सर्पि,–र्मथितादपि गोरसात्?।।74।।

दुखित होते हुए भी महान् व्यक्तियों से मित्रता का ही जन्म होता है। क्या दूध (दहि) को मथने से भी घी उत्पन्न नहीं होता है। अर्थात् होता है।

नाशं कर्तुमलं वीरा, न तज्जातिं विना द्विषाम्।
छिद्यन्ते पर्शुभिर्वृक्षा, न विना दारुहस्तकम्।। 75।।

शत्रुओं का नाश करने के लिए वीर पुरुष समर्थ होते है किंतु शत्रुओं के बिना उनका जन्म नहीं होता है। बिना लकड़ी के हत्थे की कुल्हाड़ी से वृक्ष नहीं काटे जाते हैं।

दत्ते ह्यनर्थमत्यर्थं, कुपात्रे निहितं धनम्।
किं वृद्धये विषस्यासी,–न्नाऽहीनां पायितं पयः?।। 76।।

कुपात्र मे दिया गया धन भविष्य के लिए अनर्थकारी होता है। क्या साँपों को दूध पिलाने से विष की वृद्धि नहीं होती है ?

शिष्टे वस्तुनि दुष्टस्य, मतिः स्यात् पापगामिनी।
कलावतीन्दौ मिलिते, राहुरत्तुमना अभूत्।। 77।।

दुष्ट व्यक्ति की बुद्धि शिष्टवस्तु पर भी पाप वाली होती है। कलावान् चन्द्रमाँ का साथ मिल जाने पर भी राहु की प्रकृति ग्रसण की ही रही।

भवन्त्यवसरे तुंगा, नीरसेऽपि रसोत्तमाः।
यद् ग्रीष्मर्तौ सुभीष्मेऽपि, रसाला रसशालिनः।। 78।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवसर पर तुच्छ वस्तु भी श्रेष्ठ मानी जाती है। जैसे भीषण गर्मी में रस से युक्त आम भी उपयोगी माना जाता है।

तुच्छाहारेऽपि तुच्छानां, विषयेच्छा महीयसी।
दृषत्कणभुजोऽपि स्युः, कपोताः कामिनो बहु।। 79।।

तुच्छ लोगो का आहार शुद्ध होने पर भी उनकी विषय इच्छा अधिक होती है। पत्थर के कण खाने पर कबूतर अधिक कामी होता है।

धिग् नैःस्व्यं यद्वशान्नाथं, त्यजन्त्यपि मृगीदृशः।
ईशमाशाम्बरं हित्वा, जाह्नवी जलधिं ययौ।। 80।।

धिक्कार है! दरिद्रता को जिसके कारण पत्नि भी पति को छोड़ देती है। जैसे गंगा नदी दिगम्बर शंकर को छोड़कर समुद्र में चली गई।

साधारणेऽपि सम्बन्धे, क्वाऽपि स्यात् प्रेम मानसम्।
रोहिण्या एव भर्तेन्दु,—र्न्यक्षनक्षत्रऋक्षाऽधिपोऽपि यत्।।81।।

सामान्य सम्बन्ध होने पर भी कभी—कभी (भाग्यवश) हार्दिक प्रेम हो जाता है। कहाँ तो दरिद्र रोहिणी नक्षत्र और कहाँ नक्षत्राधिपति चन्द्रमाँ, फिर भी उनमें हार्दिक प्रेम कभी—कभी दिखलाई पड़ता है।

मान्यन्ते गुणभाजोऽपि, न विना विभवं सखे !।
पतिताः पांशुभिः पूर्णे, पथि पर्युषिताः स्रजः।। 82।।

हे सखि! गुणवान व्यक्ति भी ऐश्वर्य के बिना नहीं माने जाते है। जीर्ण हुई म्लान पुष्पों की माला मार्ग में पड़ी हुई होती है।

रसिकेषु वसन् वेत्ति, कठोरात्मा न तद्रसम्।
स्तनोपरि लुठन् हार,—स्तद्रसं नोपलब्धवान्।। 83।।

रसिको के साथ में रहते हुए भी कठोर व्यक्ति उसे नहीं जान पाता है। जैसे स्तन के उपर रहा हुआ हार उस रस को प्राप्त नहीं कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रुवं स्यादुपकाराय, मानितः सरलः सखे !।
प्राणानवति किं नैव, गृहीतं वदने तृणम् ?।। 84।।

हे सखे सम्मानित सरल व्यक्ति निश्चित ही उपकार के लिए होते हैं। क्या मुख मे ग्रहण किया हुआ तृण प्राण को नहीं बचाता है?

दुःखीकृत्याऽपि स्वं पापः, परेषामपकारकृत्।
मृत्वाऽपि मक्षिकाऽन्येषां, जायते वान्तिकारिणी।।85।।

दुखी होकर भी पापी स्वयं एवं दूसरो का अपकार करता है। मक्खी मरकर भी अन्य व्यक्तियों को वमन कराने वाली होती है।

दुःखीकृत्याप्यपापः स्वं, परेषामुपकारकृत्।
झम्पां दत्वा स्वयं वह्नौ, पर्पटः परपुष्टये।। 86।।

दुखी होकर भी सज्जन व्यक्ति स्वयं एवं अन्य का उपकार करता है। जैसे अग्नि में गया पर्पट स्वयं तो कान्तिवान् होता ही है और अन्य के लिए भी पुष्टिकारक होता है।

न वासोऽपि श्रिये नीच, –गामिनां सन्निधौ सताम्।
यत् पेतुः पादपाः कूल,–ङ्कषाकूलभुवः स्वयम्।।87।।

जिस प्रकार पेतु वृक्ष नदी के किनारे रहते हुए भी स्वयं अपनी जड़ों को नष्ट कर लेता है। उसी प्रकार सज्जनों का सान्निध्य प्राप्त करने पर भी दुष्ट व्यक्ति अपना कल्याण नहीं कर सकता।

नान्यस्मै स्वं गुणं दत्ते, रागवानपि कर्कशः।
अकारि विद्रुमेणाऽन्य,–द्वस्तु किं रक्तिमांकित्तः?।।88।।

रागवान् होने पर भी कर्कष व्यक्ति स्वयं के गुण अन्य को प्रदान नहीं करता। क्या मूंगे द्वारा कोई अन्य वस्तु रक्तिम (लाल आकार वाली) बनाई गई है ? अर्थात् नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शस्यते सर्व शास्त्रेभ्यो, रूढिरेव बलीयसी।
तद्ड्.कत्वे समानेऽपि, शशीन्दुर्न मृगीति यत्।। 89।।

सभी शास्त्रों से प्रशंसित रुढ़ि बलवान् होती है किंतु सत्य नहीं। चन्द्रमाँ में हिरणी के समान चिन्ह होने से चन्द्रमाँ हिरणी नहीं बन जाता।

दृशा दुष्टदृशां दृष्टाः, प्रभावन्तोऽपि निष्प्रभाः।
बभूवुर्भुजगैर्दृष्टाः, प्रदीपाः क्षीणदीप्तयः।। 90।।

दुष्ट व्यक्तियों की दृष्टि भी दुष्ट होती है जिससे वह कान्तिवान को भी कान्तिरहित बना देता है। सर्पों की दृष्टि से दीपक प्रकाश रहित हो जाता है।

पिहितैव श्रियं धत्ते, पद्धतिः पुण्यकर्मणाम्।
दुकूलकलितावेव, कुचौ कान्तौ मृगीदृशाम्।। 91।।

पुण्याशाली व्यक्तियों के छिपे हुए सद्गुण कान्तिप्रद (कल्याणकारी) होते हैं। रेशमी वस्त्रों से ढ़ँका हुआ हरिणाक्षी स्त्री का यौवन सुन्दर लगता है।

महतामपि लघुता, तस्थुषां मूर्खपर्षदि।
मन्दधामगतस्यासी,—न्नीचत्वं दिविषद्गुरोः।। 92।।

मूर्खों की सभा में बैठा हुआ महान् व्यक्ति भी लघुता को प्राप्त करता है। जैसे मन्दधाम जाने वाला बृहस्पति नीचत्व को प्राप्त करता है।

मध्ये मेधाविनां तिष्ठन्, मूर्खोऽपि मानमश्नुते।
मन्दोऽप्युच्चैः पदं प्राप, कविकेलिगृहं गतः।। 93।।

बुद्धिमान् व्यक्तियों के बीच बैठे मूर्ख व्यक्ति भी मान को प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते है। कवि की सभा मे गये मूर्ख व्यक्ति भी उच्च पद को प्राप्त करते हैं।

दुर्दैवेऽनर्थसार्थाय, संगतिर्धीमतामपि।
गतः कविसभां भासां, प्रणयी प्राप नीचताम्।। 94।।

दुर्भाग्य होने पर बुद्धिमान् व्यक्तियों का संग भी अनर्थों के लिए होता है। जैसे शुक्रस्थान में गया सूर्य नीचता को प्राप्त करता है।

न तद्दोषलवोऽपि स्यात्, खलान्तर्वसतां सताम्।
तिष्ठन् मूर्धनि सर्पाणां, मणिः किं विषदोषवान्?।।95।।

दुष्टों के बीच बसे सज्जन व्यक्तियों मे थोड़ा दोष भी नही आता है। क्या सर्पों के सिर पर स्थित मणि विष दोष वाली हो जाती है ? अर्थात् नहीं।

संगतौ गुणभाजोऽपि, स्तब्धानां न गुणः सखे !।
न मुखश्यामता नष्टा, स्तनयोर्हारहारिणोः ।।96।।

हे सखे ! गुणवान व्यक्ति की संगत में भी अधम व्यक्ति गुणवान नहीं होते हैं। जैसे गले में हार धारण करने पर भी स्तनों के मुख की श्यामलता नष्ट नहीं हुई।

सङ्घटनेन तुच्छोऽपि, बलशाली यथा भवेत्।
घनोपद्रववारीणि, तृणानि मिलितानि यत्।। 97।।

तुच्छ व्यक्तियों के परस्पर मिलने से वे बलशाली हो जाते है जैसे तृणों के मिलने से बादलों का उपद्रव रुक जाता है अर्थात् तृण की बनी छत से वर्षा के उपद्रव से बचा जा सकता है।

मध्ये रिक्ता हता एव, भवन्ति मधुरस्वराः।
मृदंगेषु यथाऽवस्थ,—मर्थमेनं निभालय।। 98।।

मृदंग मध्य में रिक्त होता है और उसको मारने पर भी उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मधुर स्वर निकलता है। इस प्रकार मृदंग के अन्दर रहे हुए रहस्य को देखो!

अचेतनेन यत्कार्यं, जातुचिन्नेतरैश्च तत्।
आप्यते यत् कपर्देन, न तत् कीटककोटिभिः।। 99।।

कभी किसी समय जो अज्ञानि व्यक्ति के द्वारा होता है वह कार्य ज्ञानी और अन्य जनों के द्वारा भी नहीं होता है। जो एक कोड़ी दे सकती है वह करोड़ों कीड़े भी नहीं दे सकते हैं।

प्राप्य किंचित् परान्नीचः, स्यात् परोपप्लवप्रदः।
लब्ध्वा रविरुचां लेशं, भृशं यद्दुस्सहं रजः।। 100।।

अन्य लोगों से थोड़ा सम्मान प्राप्त किया हुआ नीच व्यक्ति दूसरे लोगों के लिए कष्टपद्र होता है। सूर्य का थोड़ा प्रकाश पाकर धूल बहुत दुस्सह (गर्म) हो जाती है।

रागिभिर्लभ्यते भूरि,–रभिभूतिश्च नेतरैः।
यत् कुसुम्भमरः पादै,–र्हन्यते न दृषद्गणः।। 101।।

विषयों के प्रति राग रखने वाले व्यक्तियों को पराभव अथवा तिरस्कार प्राप्त होता है अन्य (सज्जन व्यक्ति) को नहीं। क्योंकि लालिमा (रागिता) प्राप्त गुलाल का ढेर पौरों द्वारा ताड़ित किया जाता है। पत्थर के कणों का समूह पददलित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे राग विहीन होते हैं।

पुण्यवान् पापवांश्चापि, ख्यातिमन्तावुभावपि।
गजारूढं खरारूढं, चाऽपि पश्यन्ति विस्मयात्।।102।।

पुण्यवान् भी ख्यातिवाला होता है और पापी व्यक्ति भी जैसे हाथी पर बैठा व्यक्ति एवं गधे पर बैठा व्यक्ति दोनों ही आश्चर्य से देखे जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघीयानपि तोषाय, तेजोभाजोऽपि जातुचित्।
किं दीप्तये दृशोरासी,—द्दीपधूमोऽपि नाञ्जनम्?।।103।।

कभी छोटा व्यक्ति भी तेजस्वी व्यक्ति के संतोष के लिए होता है क्या जलते हुए दीपक के धूँए से बना अंजन आँखो के संतोष के लिए नहीं होता है ? अर्थात् होता है।

प्रथिता याति न ख्यातिः, सन्तु मा सन्तु वा गुणाः।
यन्नारी नष्टनेत्राऽपि, प्रोच्यते चारुलोचना।। 104।।

गुणों के नहीं रहने पर भी फैली हुई ख्याति नहीं जाती है। जैसे सुंदर नयन वाली स्त्री के नयन नष्ट हो जाने पर भी वह सुंदर नयन वाली स्त्री कही जाती है।

लघीयस्त्वेन तेजस्वी, नावज्ञामात्रमर्हति।
क्वान्धकारं भृतागारं, क्व दीपकलिका किल?।।105।।

छोटा होने के कारण तेजस्वी व्यक्ति की अवज्ञा करना उचित नहीं है कहाँ अंधकार से पूर्ण घर और कहाँ दीपक की ज्योति अर्थात् छोटा सा दीपक भी बहुत महत्वपूर्ण होता है।

अरंगोऽपि विशुद्धात्मा, परेषां रञ्जयेन्मनः।
नागवल्लीगतश्चूर्णः, श्वेतोऽपि मुखरङ्गकृत्।। 106।।

विशुद्ध आत्मा निरागी होते हुए भी दूसरे के मन को रंग देता है। पान की वेला का चूर्ण श्वेत होने पर मुख को लाल कर देता है।

रागी रागिणि नीरागो, नीरागे श्रियमश्नुते।
ताम्बूलमास्ये रक्तौष्ठे, श्यामतारेऽम्बकेऽजनम्।। 107।।

रागी व्यक्ति रागणी को प्राप्त करते हैं और निरागी व्यक्ति वैराग्य अर्थात् कल्याण को प्राप्त करते हैं। जैसे ताम्बूल से मुख और औष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाल होते हैं एवं अंजन से आँखों की किरकिरी श्यामता को प्राप्त करती है।

लभन्ते सुभटाः संपद्,–भरं व्यंगितविग्रहाः।
विद्धयोः कर्णयोरेव, यत्स्वर्णमपि(णि)कुण्डले।।108।।

सैनिक अंग भंग होने पर भी सम्पत्ति को प्राप्त करता है। छेदित कानों में ही स्वर्ण के कुण्डल पहने जाते हैं।

गुणवद्गौरवं याति, दोषो ज्योतिष्मतां सखे !।
दृशां स्फारासु तारासु, श्यामिका शस्यते न कैः ?।।109।।

हे सखे ! दिव्य व्यक्ति के गुण के समान दोष भी गौरव को प्राप्त करते है। क्या आँखो की कनीनिका में फैली कालिमा प्रशंसित नहीं होती है ?

उत्तुंगेषु रुषं कुर्वन्, भवेत् स्वयमनर्थमाक्।
शरभेण मृतिर्लेभे, कुपितेन घनोपरि।। 110।।

उच्च व्यक्तियों पर क्रोध करने पर स्वयं का अनर्थ होता है। कठोर लोहे के उपर क्रोधित हाथी का बच्चा स्वयं मरण को प्राप्त हुआ।

क्वचित् पिधत्ते मन्दोऽपि, प्रभाभाजामपि प्रभाम्।
न किं पिदधिरे धूम,–योनिना भानुभानवः ?।। 111।।

कभी–कभी प्रकाशवान् व्यक्ति के प्रकाश को मन्दव्यक्ति भी ढँक देता है। क्या सूर्य की किरणे बादलों की घटाओं द्वारा ढँकी नहीं जाती?

सखे ! श्रयति सौभाग्य,–मशुद्धेष्वेव रागवान्।
सीमन्तिनीनां सीमन्ते, सिन्दूरं शुशुभे न किम् ?।।112।।

रागी व्यक्ति सौभाग्य के लिए अशुद्ध वस्तु को भी आश्रय देता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। क्या स्त्रियों के बालो की रेखा में सिंदूर शोभित नहीं होता है ?

गुणे गतेऽपि केषांचि,–न्न यशो याति जातुचित्।
न किं मुण्डितमुण्डाऽपि, वधूःसीमन्तिनी मता?।।113।।

कभी–कभी कुछ व्यक्तियों के गुण जाने पर भी यश नहीं जाता है। क्या सिर मुण्डित होने पर भी बहु स्त्री नहीं मानी जाती है ?

तुंगेष्वतुष्टस्तुच्छात्मा, नानर्थं कर्तुमीश्वरः।
करोति शशकः किंचिद्, भूधरेषु विरोधवान् ?।।114।।

उच्चात्माओं से असन्तुष्ट हीन व्यक्ति उनका अनर्थ करने में सक्षम नहीं होता है। पर्वतों में विरोधवाला शक्तिहीन खरगोश पर्वतों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

किं करोति पिता श्रीमान्, यद्यभाग्यभृतः सुतः ?।
शंखो भिक्षामटन् दृष्टो, रत्नाकरभवोऽपि यत्।।115।।

यदि पुत्र दुर्भाग्यपूर्ण हो तो धनवान् पिता भी क्या कर सकता है ? जैसे– रत्नाकर मे उत्पन्न हुआ शंख भिक्षा के लिए धूमता हुआ दिखाई देता है।

प्रस्तावे पाप्मनां पापाः प्रजायन्ते प्रकाशिनः।
द्योतन्ते खलु खद्योताः, तमिस्रे सति सर्वतः।। 116।।

पापी व्यक्तियों का पाप भी अवसर पर प्रकाश को उत्पन्न करता है, सभी ओर अंधकार होने पर जुगनु निश्चित ही चमकता है।

हृद्यहृद्योऽपि सर्वत्र, मान्यो मधुरवाग् भवेत्।
वर्यस्तूर्येषुशंखोऽन्त,–श्चक्रोऽपि(वक्रोऽपि?)शुभगीरिति।117।

मधुरवाणी प्रिय हो या अप्रिय सर्वत्र मान्य होती है। जैसे शंख के अन्त (चतुर्थ भाग) में वक्र होने पर भी जो मधुर (शुभ) वाणी निकलती है वह सर्वोत्तम मानी जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणा गौरवमायान्ति, तद्विदां पुरतः सखे !।
काम्यन्ते कोविदैरेव, काव्यानां कठिनोक्तयः।।118।।

विद्वान् व्यक्तियों के गुणों द्वारा चारों ओर से गौरव की प्राप्ति होती है। काव्यों की कठिन ऊक्तियाँ ज्ञाता कवियों द्वारा पसंद की जाती है।

दूरतः परिगच्छन्ति, शुद्धात्मानस्तिरस्कृताः।
पातिताः प्रतिकुर्वन्ति, नोद्गमं दशनाः खलु।। 119।।

तिरस्कृत किये हुए शुद्धआत्मा दूर से ही चले जाते हैं। प्रतिकार करने पर गिरे हुए दाँत निश्चित ही फिर नहीं आते हैं।

प्रत्यर्थिनो हि हन्यन्ते, विना स्थानं महस्विभिः।
स्वयमर्चिषि दीपस्य, पतंगा न पतन्ति किम् ?।। 120।।

तेजस्वी व्यक्तियों द्वारा प्रतिकार के बिना भी शत्रुगण मारे जाते हैं। क्या पतंगा दीपक की लौ पर स्वयं नहीं गिरता है ? अर्थात् स्वयं गिरकर मर जाता हैं।

भाविनोऽपि प्रयच्छन्ति, गुणा गौरवमांगीनाम्।
गुणानां बीजमिति यत्, कर्पासो मूल्यमर्हति।। 121।।

गौरवशाली व्यक्तियों के गुणों की होनहार व्यक्ति अपेक्षा करते है। अपने गुणों के कारण ही कपास के बीजों का भी मूल्य होता है।

अप्युषितः समं मूर्खैः,–वाग्मी नोज्झति वाग्मिताम्।
काकपाकान्तिकस्थोऽपि, कलकण्ठः कलध्वनिः।।122।।

मधुर बोलने वाला व्यक्ति भी मूर्ख के समान अपनी वाणी को व्यर्थ करता है एवं बोलना नहीं छोड़ता है। कौए के पास बैठा हुआ कोयल का शिशु मधुर कण्ठ होते हुए भी कल ध्वनि करना नहीं छोड़ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवा स्वार्थाय नीचाना,—मुच्चैरौचित्यमञ्चति।
वपुःपुष्टी(ष्टि)कृते बाल्ये, द्विकसेवी न किं पिकः?।।123।।

श्रेष्ठ व्यक्तियों के द्वारा स्वार्थ के लिए नीच व्यक्तियों की भी सेवा एवं सम्मान किया जाता है। क्या बाल्यावस्था में शरीर की पुष्टि के लिए कोयल कौए की सेवा नहीं करती है ?

न विमुच्चति वृद्धोऽपि, पैशुन्यं पिशुनः खलु।
अश्नात्येव पुरीषं यत्, प्रवया अपि वायसः।। 124।।

मिथ्यानिन्दा करने वाला व्यक्ति वृद्ध होने पर भी निन्दा करना नहीं छोड़ता है। कौआ वृद्ध होने पर भी गंदगी ही खाता है।

नाऽमानमानमाप्नोति, वसञ् श्वशुरवेश्मनि।
इन्द्रायादात्सुधामब्धि,—र्जामात्रे वाऽच्युताय न।। 125।।

श्वसुर के घर में बसे जमाई का मान भी अपमान रुप हो जाता है। समुद्र ने इन्द्र को अमृत प्रदान कर दिया पर अपने जामाता विष्णु को अमृत नहीं दिया।

सखे ! वित्तवतां प्रायो, दुर्मोचो नीचसंस्तवः।
पद्मं मधुपसंपर्कं, श्रीवेश्माऽपि जहौ न यत्।। 126।।

हे सखे ! प्रायः नीच व्यक्ति धनवान् लोगों की प्रशंसा मुश्किल से छोड़ता है। जैसे लक्ष्मी के स्थान कमल के संपर्क को भ्रमर नहीं छोड़ता है।

विस्तारं व्रजति स्नेहः स्वल्पोऽपि स्वच्छचेतसि।
व्यानशे तैललेशोऽपि, सरः सर्वमपि क्षणात्।। 127।।

निर्मल मन वाले महापुरुषों के हृदय में दूसरों के प्रति निश्छल स्वल्प प्रेम क्रमशः विस्तार को प्राप्त हो जाता है। तैल के बिंदु मात्र से सम्पूर्ण तालाब क्षणमात्र मे आक्रान्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्मलानां सुवृत्तानां, संगः प्रोच्चैःपदप्रदः।
मौक्तिकैर्मिलिताः स्त्रीणां, हृदि तिष्ठन्ति तन्तवः।।128।।

निर्मल सद्वृत्ति वाले व्यक्ति का संग उच्च पद प्रदान करता है। मोतियों के संग तन्तु (धागा) भी स्त्री के हृदय पर शोभित होता है।

तदेव दत्ते दाताऽपि, यद् भाले लिखितं भवेत्।
त्रिपत्र्येव पलाशेऽभूद्, वर्षत्यपि पयोधरे।। 129।।

दाता के देने पर भी जो भाग्य में लिखा हुआ है वही मिलता है। बादल के बरसने पर भी ढ़ाँक का वृक्ष पत्तों से रहित होता है।

हित्वा बलं कुलं शीलं, पक्ष्मलक्ष्मीमुपास्महे।
फलं तरुस्थं सत्पक्षः, काकोऽत्ति न च केशरी।।130।।

हम बल, कुल एवं शील का विचार न करते हुए शोभन भ्रू वाली वनिताओं की उपासना करते हैं (सेवन करते हैं)। पंखवाला होने पर भी कौआ वृक्ष पर स्थित फल खाता है परन्तु सिंह नहीं खाता है (वह तो अपने पौरुष से शिकार करके ही उसे खाता है)।

वित्तं विनोपद्रवाय, स्वमित्रमपि जायते।
नीरं विना विनाशाय, न किं सूरः सरोरुहाम् ?।।131।।

धन के बिना स्वयं के मित्र भी उपद्रव के लिए तैयार हो जाते है। क्या पानी के बिना सूर्य कमल के नाश के लिए उद्यत् नहीं होता?

सहाये सति सोत्कर्षा, शक्तिस्तेजस्विनामपि।
यदग्नेर्दीप्यते दीप्ति,–र्जवने पवने सति।।132।।

सहायक के होने पर तेजस्वी व्यक्तियों की शक्ति उत्कर्ष को प्राप्त करती है। अग्नि जलने पर ज्वाला पवन के सहयोग से उग्र हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्रास्ते ननु तेजस्वी, स्थानं तदपि मान्यते।
अरणौ काष्ठमात्रेऽपि, लोकानां किमु नादरः?।।133।।

जहाँ तेजस्वी व्यक्ति बैठते है, वह स्थान भी निश्चित मान्य होता है। क्या शमी का टुकड़ा काष्ठ होने पर भी लोक में आदर नहीं पाता? अर्थात् सम्मान प्राप्त करता है।

तुच्छात्मोज्झति दृढतां, सद्यः संगे प्रभाभृताम्।
लाक्षा साक्षाज्जलं जज्ञे, संपर्केण हविर्भुजः?।।134।।

प्रकाशवान के संग होने पर तुच्छ व्यक्ति दृढता को शीघ्रता से छोड़ देता है। अग्नि के संपर्क से पानी भी लाल दिखाई देता है।

निःशक्तयोऽपि संयुक्ता, भवन्ति बलहेतवः।
गुडकाष्ठपयोयोगे, मद्यशक्तिर्महीयसी।। 135।।

दो निर्बल व्यक्ति भी संयुक्त होने पर बलवान् हो जाते हैं गुड़, काष्ठ एवं जल के योग से शराब की शक्ति बढ़ जाती है।

किं करोति कठोरोऽपि, संगते महसां निधौ ?।
गाहयामास लोहोऽपि, द्रवतां मिलितेऽनले।। 136।।

प्रकाशवान व्यक्ति के साथ कठोर व्यक्ति भी क्या कर सकता है? जैसे अग्नि के मिलने पर लोहा भी द्रवता को प्राप्त हुआ।

तेजस्तिष्ठतु संगोऽपि, तद्वतां बीजमर्चिषाम्।
पश्य पावकसंयोगा,—ज्जलमप्यतिदाहकृत्।। 137।।

प्रकाश के स्रोत के संग बैठा व्यक्ति भी उसके समान प्रकाशित हो जाता है। जल शीतल होने पर भी अग्नि के संयोग से दाहक बन जाता है।

गता यत्राऽपि तत्रापि, वाग्मिनो विश्ववल्लभाः।
पुरग्रामवनोद्याने, कोकिलाः श्रुतिशर्मदाः।। 138।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुर बोलने वाले व्यक्ति यहाँ–वहाँ कही भी चले जाए पूरे विश्व में सभी को प्रिय होते हैं। कोयल की आवाज नगर, गॉव, जंगल एवं उद्यान सभी जगह प्रिय लगती है।

सति स्वामिनि दासानां, तेजो भवति नाधिकम्।
निर्भानि भानि जायन्ते,–ऽत्युदिते रजनीकरे।। 139।।

स्वामी के होने पर दासों का तेज अधिक नहीं होता है। चन्द्रमाँ के उदय होने पर तारों में चमक होने पर भी कान्ति रहित हो जाते हैं।

दैवमेव प्रपन्नानां, पुंसामाशा फलेग्रहिः।
अपिबम्दिर्भुवस्तोयं, चातकैस्तुतुषेऽम्बुदात्।। 140।।

भाग्य के अनुसार चलने वाला पुरुष लाभ ग्रहण की आशा वैसे ही रखता है जैसे भूमि का पानी न पीने वाला चातक पक्षी बादल से संतोष पाता है।

लभ्यते लघुता सद्भिः, परपार्श्वमुपस्थितैः।
सनक्षत्रा ग्रहाः सर्वे,–ऽस्तं गताः सूर्यपार्श्वगाः।।141।।

सज्जन लोगों के निकट उपस्थित होने से दूसरे व्यक्ति लघुता को प्राप्त करते है। सूर्य के निकट आने पर सभी ग्रह नक्षत्र अस्त हो जाते है।

पदं पराभवानां स्यात्, पुमांस्तेजोभिरुज्झितः।
पदप्रहारैर्न घ्नन्ति, किं निर्वाणं हुताशनम् ?।। 142।।

तेज विहीन व्यक्ति पराभव (अपमान) को प्राप्त होता है। क्या निर्वाण प्राप्त अग्नि (बुझी हुई अग्नि) पाँव के प्रहारो से कुचली नही जाती ? अर्थात् उस पर लोग बे रोक टोक पाँव रखकर चले जाते हैं।

दोषे तुल्याऽवकाशेऽपि, गुणी मान्यो न चेतरः।
छिद्रे सत्यपि हारोऽस्थात् कुचयोर्न च नूपुरम्।।143।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण के समान दोष का स्थान होने पर भी गुणीजन सम्मान के योग्य होते है अन्य नहीं। मोतियों में छिद्र होने पर भी हार का स्थान हृदय पर होता है नूपुरों का नही।

तुच्छात्माऽपि पराभूतः, सद्यः स्यादभिभूतये।
फूत्कृतेन हतं भस्म, स्वमयं कुरुते मुखम्।। 144।।

अन्य को पराभूत करने के लिए तैयार व्यक्ति स्वयं ही पराभूत होता है। जैसे फूँक के द्वारा अग्नि को बुझाने पर स्वयं का मुख राख से मलिन हो जाता है।

स्वं विनाश्याऽपि तुच्छात्मा, भवेदन्यविनाशकृत्।
पावके पतितं पाथः, स्वस्य तस्य च हानये।। 145।।

तुच्छ आत्मा स्वयं का भी नाश करता है और अन्य का भी। अग्नि में गिरा हुआ पानी स्वयं का और अग्नि का भी नाश करता है।

हीनानां वृद्धिरल्पाऽपि, नार्हा तेजोजुषामपि।
भस्मानं भारितो वह्नि,—रसन्निव निरूप्यते।। 146।।

हीन व्यक्तियों के तेज की अल्पवृद्धि भी प्रशंसा के योग्य नहीं है। राख से ढकी हुई अग्नि "नही हैं" ऐसा निश्चय किया जाता हैं।

विशेषाज्जडसंसर्गः, साक्षराणामनर्थकृत्।
समर्थयन्त्यर्थमेनं, यल्लेखा लिखिताऽक्षराः।। 147।।

विशेष कर साक्षर (विद्वान्) व्यक्तियों का जड़ बुद्धि के साथ संसर्ग (संपर्क में आना) महान् अनर्थकारी होता है इसका समर्थन प्रस्तर खण्ड पर उल्लेखित अक्षरों से किया जा सकता है।

नाप्नुवन्त्यबुधास्तत्त्वं, विद्वत्सु मिलितेष्वपि।
किमन्धा मुखमीक्षन्ते, कृतेऽपि मुकुरे करे ?।। 148।।

विद्वान् व्यक्तियों पर भी मूर्ख व्यक्ति तत्व को प्राप्त नही करते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या अन्धा व्यक्ति हाथ मे दर्पण होने पर भी अपना मुख देख सकता है ? अर्थात् नहीं।

परात् प्राप्तप्रतापानां, बलाधिक्यं कियच्चिरम्।
दिवैवोष्णत्वमुष्णांशु–तप्तानां रजसाममूत्।।149।।

अन्य व्यक्तियों से प्राप्त बल की अधिकता कितने समय तक होती है ? दिन में सूर्य की गर्मी से तपी हुई धूल कुछ समय बाद स्वयं शीतल हो जाती है।

महान्तो मिलिताः सन्तो, यच्छन्त्याधिक्यमात्मनः।
शुक्ति(ः)संयुक्तितो मुक्ता,–फलत्वं जलमापयत्।।150।।

महान् व्यक्ति मिलने वाले को अपना आधिक्य देते हैं। सीप जल से संयुक्त होकर मोती प्रदान करती है।

स्वच्छात्मनि सङ्गतेऽपि, श्यामात्मा यात्यनिर्वृतिम्।
कर्पूरेऽन्तर्निहितेऽपि, दृगश्रूणि विमुंचति।।151।।

स्वच्छ आत्मा का संग होने पर भी कलुषित आत्मा दुखी होता है। कपूर अपने भीतर डालने पर आँखे आँसू छोड़ती हैं।

नैवास्थानस्थितं वस्तु, वस्तुतः श्रियमश्नुते।
महार्घ्यमपि काश्मीरं, रोचते न विलोचने।। 152।।

अनुचित स्थान पर स्थित वस्तु कल्याण को प्राप्त नहीं करती है। महामूल्यवान होने पर भी केसर आँखो में नहीं लगाई जाती है।

शुद्धात्मा दुःखदाताऽपि, भवे दायतिशर्मदः।
बाष्पपातेऽपि कर्पूराच्–छैत्यं तदनु चक्षुषोः।। 153।।

शुद्ध आत्मा दुखदाता होने पर भी भविष्य में सुख देने वाला होता है। कपूर से आँखों से पानी गिरने पर भी बाद में शीतलता प्राप्त होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्मूखानां गुणप्राप्तिर्दुःखाय जगतामपि।
छिद्राऽन्वेषी परप्राणान्, हन्ति बाणो हि तादृशः।।154।।

दुष्ट व्यक्तियों की गुण प्राप्ति भी संसार के लिए दुखदायी होती है। छिद्रों को खोजने वाला बाण वास्तव में दूसरों के प्राणों का नाश कर देता है।

अन्तःशिष्टा अपि मुखे, दुष्टा अप्रीतिकारिणः।
दुष्टाः किं नाऽहयस्तुण्डे, सविषे निर्विषा हृदि?।।155।।

हृदय शिष्ट होने पर भी यदि मुख दुष्ट हो अर्थात् दुष्ट वचन बोलने वाला हो तो वह अप्रीति का कारण होता है। क्या मुख विष सहित होने पर एवं हृदय विष रहित होने पर भी सर्प दुष्ट नहीं होते हैं।

दोषः स्तोकोऽपि नीचानां, जगदुद्वेगकारणम्।
वृश्चिकानां विषं दुष्ट–मपि पुच्छाऽग्रगं विषम्।।156।।

नीच व्यक्तियों का थोड़ा दोष भी जगत् के उद्वेग का कारण होता है। बिच्छुओं की पूँछ के अग्रभाग में रहा थोड़ा विष भी हानिकारक होता है।

सदुक्तिरपि दोषाय, कदाग्रहजुषां सखे !।
संनिपातवतां सर्पि,–ष्पानं तद्वृद्धये न किम्?।।157।।

प्रसन्नता देने वालों (सज्जन व्यक्तियों) की सद्उक्ति भी दुराग्रहियों को दोष के लिए होती है। क्या संनिपात वाले व्यक्ति को घी पिलाने पर उस दोष की वृद्धि नहीं होती है?

भवन्ति सुमनःसंगा,–दपि क्षुद्रास्तदन्तिनः।
यत्तिला मिलिताः पुष्पै,–र्बभूवुस्तन्मया इव।।158।।

सज्जनों के सम्पर्क वश क्षुद्र व्यक्ति भी उनके समान समादार–पात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन जाते हैं। जैसे पुष्पों में सम्मिलित तिल भी तदाकार मय हो जाते हैं (उनका भी समान भाव से आदर होता है।)

वाचोऽपि जडतः प्रादु,–र्भूताः सन्तापहेतवे।
जाता जीमूततो विद्यु,–न्न स्यात् किं दाहदायिनी?।।159।।

वाणी जड़ हवाणी होते हुए भी सन्ताप का कारण उत्पन्न करने वाली होती है। क्या बादल (बादल की गड़गड़ाहट) से अग्नि देने वाली विद्युत् उत्पन्न नहीं होती ?

क्षुद्रात्मानोऽन्तरागत्य, सृजन्ति महतां क्षितिम्।
मशकाः करिकर्णान्तः, प्रविश्य घ्नन्ति तं न किम्?।।160।।

क्षुद्रआत्मा महान् व्यक्ति के जीवन में प्रवेशकर उनकी महानता का नाश कर देता है। क्या मक्खी हाथी के कान मे प्रवेश कर उसका नाश नहीं करती है ? अर्थात् करती है।

स्यादपि स्वल्पसत्त्वानां, भूयसी भीर्महात्मनाम्।
मशका यान्तु मा श्रुत्यो,–र्भियेतीमश्चलश्रवाः।। 161।।

महान् व्यक्तियों को अल्पसत्त्व से भी अपेक्षाकृत अधिकभय होता है। हाथी डरता है कि, "मक्खी कान में न चली जाए" इस कारण कानों को हिलाता रहता है।

महान् सद्यः समुत्पन्नो,–ऽप्युपकाराय भूयसे।
व्यजनोद्भूतोऽपि वातः, शैत्यं धत्ते न किं द्रुतम् ?।।162।।

महान् व्यक्ति उपकार के लिए शीघ्र तैयार रहते है। क्या पंखे से उत्पन्न हवा शीघ्र शीतलता नहीं देती है ?

महस्विनोऽप्यवश्यं स्यात्, तुच्छात्माऽनर्थकारणम्।
तृणलेशेऽन्तःपतिते, बाष्पपातो न किं दृशोः ?।।163।।

तुच्छ व्यक्ति अवश्य महान् व्यक्तियों के अनर्थ का कारण होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। छोटा सा तृण भी आँखों के अन्दर गिरने पर क्या आँसू नही गिरता है ?

महात्मनां विपत्तौ स्या,—दुत्साहः श्यामलात्मनाम्।
किमस्तसमये भानो,—र्न च्छाया वृद्धिभागभूत् ?।।164।।

महान् व्यक्तियों की विपत्ति के समय कलुषित मन वाले व्यक्तियों का मन उत्साहित हो जाता है। क्या अस्तकाल में सूर्य की छाया वृद्धिगत नहीं होती है ? अर्थात् छाया बढ़ जाती है।

श्यामात्मानः समायान्ति, न्यत्कृता अपि सत्वरम्।
झटित्येव यदुद्यान्ति, मुण्डिता अपि मूर्धजाः।। 165।।

कलुषित व्यक्ति तिरस्कृत होने पर भी शीघ्रता से वापस (समीप) आ जाता है। बाल मुण्डित होने पर भी शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं।

महानास्तां तदभ्यर्ण,—भाजोऽपि दृग्गरीयसी।
कुंजराः कीटिकाकल्पाः, शैलमूर्धनि तस्थुषाम्।। 166।।

महान् व्यक्ति के पास बैठने वाले व्यक्ति की दृष्टि भी दीर्घ हो जाती है। पर्वत की चोंटी पर बैठे हाथी भी कीट (कीड़े) दिखाई देते है।

लघोस्तेजस्विताऽपि स्या,—न्महतोऽपि लघुत्वकृत्।
संक्रान्तो मुकुरक्रोडे, भूधरः कर्करायते।। 167।।

लघु व्यक्ति महान् व्यक्ति की महानता को भी लघु बना देता है। विशाल पर्वत दर्पण में छोटे से पत्थर सा प्रतिबिम्बित होता है।

लघीयसां गतिर्यत्र, न तत्र महतां गतिः।
पिपीलिकानामारोहो, यद् गजानामगोचरः।।168।।

जहाँ लघु व्यक्तियों की गति होती है वहाँ महान् व्यक्तियों की गति नहीं होती है। जहाँ चींटियों का चढ़ना होता है वहाँ हाथी नहीं चढ़ते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रहः श्रियमिच्छभ्दिः कर्तव्योऽपि लघीयसाम्।
संगृहीतं दृशोरासीत्, कज्जलं किं न कान्तये ?।।169।।

बहुत छोटे व्यक्तियों का कल्याण की इच्छा से किया गया संग्रह योग्य है। क्या दृष्टि में संग्रहीत काजल कान्ति के लिए नहीं होता है?

सत्कृतोऽपि त्यजत्येव, न खलः खलतां खलु।
कटुतां नाऽत्यजन्निम्बः, पायितः ससितं पयः।। 170।।

उपकार करने पर भी दुष्ट व्यक्ति अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता है। दूध पिलाया हुआ नीम अपनी कटुता को नहीं छोड़ता है।

वंश्येषु विनयिष्वेवा,–ऽधिरोहन्ति गुणाः सखे !।
नतिमत्येव कोदण्डे, दृष्टं यद् गुणगौरवम् ।।171।।

हे सखे ! कुलीन व्यक्तियों के विनम्र होने पर ही उनकी श्रेष्ठता उन्नत होती है। धनुष के झुकने पर ही डोरी गौरव को प्राप्त करती है।

वासस्थानविनाशाय, भवन्ति सुकृतीतराः।
काष्ठकीटा न किं दृष्टा, ईदृग्दुष्टविचेष्टिताः?।।172।।

पापी व्यक्ति स्वयं के स्थान का नाश करने वाला होता है। क्या काष्ठ के कीड़े को नहीं देखा जो इस तरह की दुष्टचेष्टा करता है ?

पतितस्य निजस्याऽपि, न संगो गुणिनां मतः।
यत्संस्तुतावपि त्यक्तौ, हारेण युवतीकुचौ।।173।।

गुणी जनों के लिए अपने पतित (दुराचारी) स्वजनों का सम्पर्क भी अच्छा नहीं होता है। युवतीजन के स्तन की शोभा बढ़ाने का हेतु हुए भी (अलंकृत करने के पश्चात्) हार कुचौ को अस्त व्यस्त कर देते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन बहुदोषोऽपि, गुणेन बलिना प्रियः।
हारः सच्छिद्रमुक्ताढ्यो, मान्यो नैकगुणोऽपि किम्?।।174।।

बहुत दोष होने पर भी एक गुण प्रबल होने से वह प्रिय होता है। क्या छिद्र युक्त मोतियों का हार एक ही गुण (डोरा) के कारण मान्य नहीं होता ?

लघूनपि गुरूकुर्युः, स्वमहोभिर्महस्विनः।
पश्य दीपप्रभादीप्तं, लघु रूपं महत्तरम्।। 175।।

महान् व्यक्ति अपनी प्रभा द्वारा लघु को भी गुरु कर देते हैं। दीपक की प्रभा छोटी होते हुए भी प्रकाश का विस्तार करती है।

सेवा तिष्ठतु शिष्टाना,—मपि दर्शनमर्थकृत्।
न स्यात् संपत्तये केषां, प्रेक्षणं चाषपक्षिणाम्?।।176।।

सज्जन व्यक्तियों की सेवा तो एक ओर रही, उनका दर्शन भी कल्याण करने वाला होता है। क्या चाष पक्षियों का दर्शन कल्याण के लिए नहीं होता है ?

अचेतनोऽप्यपुण्यात्मा, सेवितोऽनर्थसार्थकृत्।
न च्छायाऽप्युपविष्टानां, किं कलेः कलिकारिणी।।177।।

पापी व्यक्ति अज्ञानी होने पर भी अनर्थों के लिए सेवित होता है। क्या बहड़ वृक्ष की छाया उसमें बैठे व्यक्तियों के झगड़े का कारण नहीं होती है ?

यत्र तत्र समेतः स्याद,—पुण्यः पदमापदाम्।
प्राप्तो वहति पानीयं, यत्र तत्राऽपि कासरः।। 178।।

जहाँ अपुण्यवान् व्यक्ति के कदम पड़ते है वहाँ पर विपत्ति चली आती है। जहाँ महिष (भैसा) होता है वहाँ पंकिल पानी (कीचड़युक्त) ही प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचेतनोऽपि धन्यात्मा, सेवितः संपदे सखे !।
चिन्तामणिः किमश्माऽपि, न सूते श्रियमीप्सिताम्? ।।179।।

है मित्र ! अज्ञानी होते हुए भी पुण्यशाली व्यक्ति सुखकारी होता है। क्या चिन्तामणि रत्न पत्थर होते हुए भी इच्छाओं की पूर्ति नहीं करता है ? अर्थात् मनोभिलाषा पूर्ण करता है।

अयच्छन्तोऽपि संपत्तिं, प्रीयते विपुलाशयाः।
अददानोऽपि विद्युत्वा(द्मा),—न्न मुदे किं कलापिनाम्? ।।180।।

सम्पत्ति नहीं देने पर भी महान् व्यक्ति प्रिय व्यक्ति होते हैं। पानी नहीं देने पर भी विद्युत् (बिजली) की चमक क्या मयूरों के हर्ष के लिए नहीं होती है ?

वित्तवत्स्वेव जायेत, नृणां प्रीतिर्महत्स्वपि।
हर्षः सप्रतिमेष्वेव, चैत्येष्वप्रतिमेष्वपि।।181।।

धनिकों के समान महान् व्यक्तियों में भी लोगों की प्रीति होती है। प्रतिमा युक्तचैत्य के समान ही प्रतिमा रहित चैत्य को देखकर हर्ष होता है।

सदसतोरीक्षितयोः, सौहृदं सति संभवेत्।
घृते भवति वाल्लभ्यं, जग्धयोर्घृततैलयोः।।182।।

सुंदर असुंदर दिखने पर भी मित्रता संभव है। जैसे घी प्रिय होने पर भी घी और तैल दोनो ही खाये जाते हैं।

सृजन्ति विशदात्मानो, विवेकं वस्त्ववस्तुनोः।
मराला एव कुर्वन्ति, निर्णयं क्षीरनीरयोः।।183।।

पंडित आत्मा ही वस्तु अवस्तु का निर्णय कर सकता है। जैसे हंस ही क्षीर नीर का निर्णय कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपत्प्राप्तोऽपि तेजस्वी, परस्य उपकारकृत्।
किमस्तं व्रजता न्यस्तं, न दीपेंऽशुमता महः?।।184।।

तेजस्वी व्यक्ति आपत्तिग्रस्त होने पर भी दूसरों का उपकार करता है। क्या अस्ताचल को प्राप्त सूर्य दीपक को प्रकाशित नहीं करता ?

सुखयन्ति जगद् वाग्भि,—र्लघीयांसोऽपि वाग्मिनः।
किं न लघ्व्योऽपि गोस्तन्यो, रसैर्विश्वसुखावहाः?।।185।।

बोलने मे चतुर व्यक्ति छोटे होते हुए भी वाणी से जगत् को सुख पहुँचाते हैं। क्या द्राक्षा छोटी होने पर भी रस द्वारा विश्व को तृप्त नहीं करती ?

महानपि प्रसिद्धोऽपि, दोषः क्वाऽपि गुणायते।
न जरा भाति किं दीक्षा,—भाजि भिषजि राजि च?।।186।।

अत्यन्त प्रसिद्ध कोई दोष भी कभी—कभी या कहीं—कहीं गुण के समान बन जाता है। क्या दीक्षा पात्र (दीक्षा प्राप्ति के समय) एवं वैद्य राजि मे (वैद्य सभा में) जरा (वृद्धाअवस्था) शोभायमान नहीं होती है ? अर्थात् गुण रुप बन जाती है।

आस्तां प्रभावांस्तत्प्राप्त,—प्रभोऽपि जनकृत्यकृत्।
सूर्यादाप्तरुचोऽप्यासन्, यदीपाः कार्यकारिणः।। 187।।

तेजस्वी व्यक्ति तो दूर रहो उससे प्राप्त प्रभा भी लोगों के कार्यों को पूर्ण करती है। सूर्य से निकली किरणें भी प्रकाश के कार्यों को कर देती है।

धत्ते महस्वितां मुर्खै,—र्मलिनोऽपि महाधनः।
भ्रमवच्छाणसंसर्गी, किमसिर्न विभासुरः ?।। 188।।

मूर्ख व्यक्ति भी भद्र व्यक्ति की संगत से विशेष रुप से शोभा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारण करता है। क्या सान पर चढ़ाई गयी तलवार चमकीली नहीं होती ?

धत्ते शोभां विशेषेण, जडोऽप्यत्युग्रसंगतः।
मिलितं किं श्रियं याति, पानीयं नासिधारया ?।।189।।

मूर्ख व्यक्ति भी भद्र व्यक्ति की संगत से विशेष रुप से शोभा को धारण करता है। क्या सान पर चढ़ी हुई तलवार से संसर्गित पानी कल्याण को नहीं प्राप्त करता है ?

एको दुर्जनदृग्वारी, दोषो विदुषि जायते।
रेखा स्याद् बालभालस्था,–ऽऽजंनी दृग्दोषवारिणी।।190।।

दुर्जन व्यक्ति मात्र दोषदृष्टि निवारण करने से विद्वान बन जाता है। जैसे आँखों मे काजल की एक रेखा नेत्र–दोष का निवारण कर देती है।

पापः सतां सभान्तःस्थो रक्षिता तद्गुणश्रियाम्।
न किमन्तर्गतोऽगारः, पाति कर्पूरसंपदम् ?।। 191।।

सज्जन व्यक्तियों की सभा मे स्थित पापी व्यक्ति के भी गुणों की रक्षा होती है। अंगारे के अन्दर क्या कपूर की सम्पत्ति की रक्षा नहीं होती है ?

तुंगानामापदं हर्तुं, तुंगा एव भवन्त्यलम्।
समर्थास्तोयदा एव, तापं हर्तुं महीभृताम्।। 192।।

उच्च व्यक्तियों की विपत्ति को हरने के लिए उच्चव्यक्ति ही समर्थ होते है। जैसे पर्वतों के ताप को हरने के लिए बादल ही समर्थ होते है।

कलावन्तो विशिष्यन्ते, पुरतोऽपि प्रभाभृताम्।
सति सूरे शशी तस्मिन् सति नान्यश्च दृश्यते।।193।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभा वाले व्यक्तियों के होने पर भी कलावान व्यक्ति का विशेष महत्त्व होता है। सूर्य और चन्द्रमाँ के होने पर अन्य कोई चमकता दिखाई नहीं देता है।

एकाऽन्वयभुवोऽपि स्युः, शुद्धाः पूज्या न चेतरे।
गोजातमपि मान्यं यद्, गोरसं न च गोमयम्।।194।।

एक ही गौत्र के होने पर भी पृथ्वी पर शुद्ध व्यक्ति पूजे जाते है। और (अन्य) नहीं। गाय से उत्पन्न दूध मान्य होता है गोबर नहीं।

रसिकैरेव बुद्धयन्ते, रसिकानां गिरः सखे !।
ध्रियन्ते वसुमत्यैव, यत्पयांसि पयोमुचाम्।। 195।।

रसिक व्यक्तियों की वाणी रसिक व्यक्तियों द्वारा ही जानी जाती है। बादलों का पानी पृथ्वी ही धारण करती है।

तुल्येऽपि विषयोल्लेख, आकृतिस्तु बलीयसी।
पुंसामेवाग्रहः स्त्रीषु, न तासां तेषु चाभवत्।। 196।।

विषय के समान होने पर भी वस्तु की आकृति अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। स्त्रियों के समान होने पर भी सुंदर आकृति वाली स्त्री, पुरुष के हृदय मे अपना स्थान बना लेती है।

समानेऽपि हि संबन्धे, निजार्थो बलवत्तरः।
पात्न्याः पुत्रे महिष्याश्च, पुत्र्यां यत् प्रेम मानसम्।।197।।

पत्नि पुत्र वेश्या मे समान सम्बन्ध होने पर मन में प्रेम तो होता है किंतु स्वयं का स्वार्थ अपेक्षाकृत बलवान् होता है।

मानोन्नता न मुंचन्ति, स्वं मानं प्रहृता अपि।
नतौ नलिननेत्राया, न स्तनौ निहतावपि।। 198।।

अभिमान से उन्नत व्यक्ति प्रहार होने पर भी मान को नहीं छोड़ता है। नीलकमल के समान नेत्रवाली कामिनी की छाती पर स्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्नत स्तन आच्छादित (निहत होने पर भी) झुकते नहीं हैं।

कर्णे कर्णेजपैर्युक्तः, कोविदोऽपि विकारवान्।
यद् गिरीशोऽप्यभूद् भीमो, द्विजिह्वाधिष्ठितश्रवाः।।199।।

झूठी निंदा करने वाले व्यक्तियों के साथ कान को युक्त करने पर चतुर व्यक्ति भी विकार वाला हो जाता है। शंकर भयंकर सर्प को कान पर अधिष्ठित करने से भीमशंकर कहलाये।

विनेयास्ताडिता एव, संपद्यन्ते पदं श्रियाम्।
सुवर्णमपि जायेत, हतमेव विभूषणम्।। 200।।

जो शिष्य पीटे जाते है वही कल्याण को प्राप्त करते है। स्वर्ण पीटे जाने पर ही आभूषण का रुप धारण करता है।

दोषे दौषैकदृग्दृष्टि,—र्न गुणे प्रगुणे पुनः।
खराणां पतनेच्छा स्यात्, पांसौ न च जलेऽमले।।201।।

दुर्जन व्यक्ति की दृष्टि दोष में ही संतोष प्राप्त करती है। गुणी व्यक्तियों के गुणों में नहीं। गधों की इच्छा धूल मे लोटने की ही होती है निर्मल जल मे नहीं।

संप्राप्तसंपदोऽपि स्यु,—र्न सन्तः शीललोपिनः।
किं कलाकलितोऽपीन्दु,—र्जहौ जिष्णुपदस्थितिम्?।।202।।

सम्पत्ति से युक्त होने पर भी सज्जन व्यक्ति शील से रहित नहीं होते है। क्या कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमा विष्णु पद (आकाश) को धारण नही करता? अर्थात् आकाश मे पद (स्थान) प्राप्त करता है।

तुल्येऽपि कर्मणि स्थान,—विशेषान्नरि गौरवम्।
समाने भारनिर्वाहे, यद्वामे गुरुता गवि।। 203।।

कार्यों में समानता होने पर भी स्थान विशेष से मनुष्य मे गौरव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। समान भार निर्वाह होने पर भी बॉये स्थित (बॉयी तरफ जुते हुए) बैल में गौरव होता है।

महतामपि दुर्मोचा, दुष्टतान्तर्विवर्तिनी।
किमाम्रैरमृतात्कम्रै, –र्मुमुचेऽन्तःकठोरता ?।। 204।।

महान् व्यक्तियों के भीतर रहने वाली कठोरता (दुष्टता) अत्यन्त कठिनाई से भी छूट नहीं पाती हैं। वे उसे समूल छोड़ नहीं सकते है। क्या मधुर रस लिये हुए आम्रफल (पका फल) अपने भीतर स्थित कठोरता (गुठली के रुप में) को छोड़ पाया है ? अर्थात् नहीं।

स्थानके भूयसीं शोभा, मपि सद्वस्तु गच्छति।
स्त्रीदृशोरंजनस्य श्री,–र्या न सा नरचक्षुषोः।। 205।।

उचित स्थान में स्थित वस्तु ही अत्यधिक शोभा पाती है। स्त्री के नेत्रों मे अंजन की जो सुंदरता होती है वह पुरुष के नेत्रों में नहीं होती है।

स्थाने यच्छोभनं वस्तु, कुस्थाने स्यात्तदन्यथा।
वालाः पुंसां मुखे शस्ता, स्तुण्डे स्त्रीणामनर्थदाः।।206।।

जो वस्तु किसी स्थान में शोभित है, वही कुस्थान मे अशुभ हो जाती है। पुरुषों के मुख पर बाल प्रशंसनीय है किंतु स्त्रियों के मुख पर अशुभ होते हैं।

श्रेयानपि स्थितः पापैर्(पापे), गुणोऽन्येषां भयावहः।
ऊर्णनाभे कुविन्दत्वं, मक्षिकाणामनर्थकृत्।। 207।।

पापी व्यक्ति में स्थित सर्वोत्तम गुण भी अन्यव्यक्तियों के लिए भयावह होता है। जैसे मकड़ी की नाभि में रही जाल बुनने की शक्ति मक्खियों के लिए अनर्थकारी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाऽतिशुद्धस्वरूपाणां, दुरिते जायते रतिः।
स्थीयते कलहंसैः किं, वर्षासु कलुषाम्भसि?।।208।।

अत्यन्त पवित्र आत्मा वाले व्यक्तियों की पाप कर्म में रुचि नहीं होती है। क्या सुंदर हँसो द्वारा (राज हंसो द्वारा) कलुषित जल में निवास किया जाता है ? अर्थात् कदापि नहीं।

खलानां न स्तुतिस्तादृक्, प्रिया निन्दा च यादृशी।
यथा शूकरो इच्छति, विष्ठा न तु मिष्ठानम्।। 209।।

दुष्ट व्यक्तियों को पर प्रशंसा उतनी प्रिय नहीं होती जितनी पर निंदा प्रिय होती है। वराह (शूकर) को मिष्ठान का भोजन उतना प्रिय नहीं होता जितना गंदे स्थान मे रहने वाली विष्ठा प्रिय होती है।

बहिस्तान्मंजवस्तुच्छा, अन्तः कठिनवृत्तयः।
किमीदृक् क्वाऽपि केनाऽपि, नालोकि बदरीफलम्?।।210।।

तुच्छ व्यक्ति बाहर से मनोहर होते है और अन्दर से कठोर वृत्ति वाले होते है। क्या इस प्रकार का बोर का फल कहीं किसी के द्वारा नहीं देखा गया ?

सृजन्ति तुच्छा अप्यर्तिं, महतीं महतोऽत्यये।
तिष्ठन्ति तरणेरस्ते, मुद्रितास्याः खगा अपि।।211।।

महापुरुषों की ख्याति विनष्ट हो जाने पर तुच्छ आत्मा (दुष्टव्यक्ति) भी शोक या दुख प्रकट करते हैं। सूर्य के अस्त होने पर पक्षीगण भी मुँह बन्द कर लेते हैं।

प्रभावान्निष्प्रभेणाऽपि, सङ्गतः श्रियमश्नुते।
रविरुच्चैः पदं प्राप, गतोऽप्यंगारकौकसि।। 212।।

प्रभावान् व्यक्ति निष्प्रभावान् व्यक्ति के संग होने पर भी कल्याण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त करता है। मंगलग्रह मे गया हुआ सूर्य भी उच्चपद को प्राप्त करता है।

कलावानपि हीनत्वं, कलयेद्वक्रवेश्मगः।
न नीचो वृश्चिकस्थः किं, बान्धवः कुमुदामभूत्?।।213।।

कलावान् व्यक्ति भी वक्रारास्ते को धारण करने पर हीनत्व को प्राप्त हाता है। क्या चन्द्रमा वृश्चिक राशि में स्थित होने पर नीच नहीं होता है ?

दोषायते गुणः क्वाऽपि, दोषः क्वाऽपि गुणायते।
केशेषु शुभ्रिमा दुष्टः, शिष्टस्तारासु कालिमा।।214।।

कही गुण दोष बन जाते है तो कही दोष गुण बन जाते है। बालों में सफेदी दुष्ट होती है तो आँखों के तारो में कालिमा शिष्ट होती है, गुणवान् बन जाती है।

तुंगाः कार्यविशेषाय, मान्यन्ते तद्गुणप्रियैः।
पोष्यन्ते दन्तिनो नूनं, दुर्गध्वंसाय पार्थिवैः।। 215।।

उच्चव्यक्ति कार्यविशेष के लिए प्रशंसकों द्वारा माने जाते हैं। राजाओं द्वारा दुर्ग ध्वंस करने के लिए हाथियों का पोषण किया जाता है।

तुच्छोऽपि हृद्यवादित्वा,—ज्जायते मानभाजनम्।
किं कीरः कामीतां भुक्तिं, नाप्नोति मधुरं ब्रुवन्?।।216।।

हृदय को प्रसन्न करने वाली वाणी को बोलने पर हीन व्यक्ति सम्मान का पात्र हो जाता है क्या तोता मधुर बोलता हुआ अभिलाषित भोजन (मिष्ट भोजन) नही प्राप्त करता है ?

नीचा अपि पीडितायां, स्वजातौ यान्त्यनिर्वृतिम्।
पूत्कुर्वन्ति न किं काकाः, काके मृतिमुपेयुषि?।।217।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वजाति के पीड़ित होने पर नीच व्यक्ति भी खिन्न होते हैं। कौए के मर जाने पर अन्य कौएँ आवाज करते हुए क्या पास नहीं आते ?

स्वजातिमेव निघ्नन्ति, नूनं जडनिवासिनः।
आकर्णिताः सकर्णैः किं, न मीनाः स्वकुलाशिनः?।।218।।

वास्तव में मूर्ख के साथ रहने वाला व्यक्ति अपनी ही जाति का नाश करता है। क्या ज्ञानियों द्वारा नहीं सुना गया कि, जल मे रहने वाली मछली अपने ही कुल का नाश करती है।

निवसन्तीं वयं विद्मः, सवित्रीनेत्रयोः सुधाम्।
दुग्धपानं विना कूर्म्याः, प्राणन्त्यर्भा निभालनैः।।219।।

हम जानते है कि, माता के नयनों मे सदा अमृत ही बसता है। कछुओं का बच्चा दुग्ध पान के बिना अपनी माता की दृष्टि से ही जीवित रहता है।

आढ्यस्तिष्ठतु तत्पार्श्व,—मपि तेजस्वि तेजसा।
श्रीददिग्वर्तिमूर्तिः किं, भानुमान्नातिदुःसहः?।।220।।

तेजस्वी व्यक्ति के पास बैठा व्यक्ति भी तेज से सम्पन्न हो जाता है। उत्तर दिशा में स्थित चमकती हुई कुबेर की मूर्ति क्या अतिदुःसह्य नहीं होती है ?

रसाढ्या मध्ये मृदवः, स्युर्बहिः कर्कशा अपि।
किमीदृक् क्वाऽपि केनाऽपि, नालोकि कदलीफलम्?।।221।।

महान व्यक्ति अंदर से रस से पूर्ण अर्थात् कोमल होते हैं और बाहर से कठोर होते हैं। इस तरह का केले का फल क्या कहीं किसी के द्वारा नहीं देखा गया ?

ददतो नात्मनो वित्त, व्ययं ध्यायन्ति दानिनः।
स्वनाशो रम्भयाऽचिन्ति, किं फलोत्सर्जनक्षणे?।।222।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानी व्यक्ति धन देते हुए धन के व्यय का चिंतन नहीं करते हैं। क्या केले का वृक्ष फल उत्सर्जन के समय उनके नाश का चिन्तन करता है ? लोगों द्वारा उसके फल काट लिये जाते है तब भी वह उनके विनाश का चिंतन नहीं करता है।

अचेतनोऽपि तुगांत्मा, श्रितो दत्ते निजं गुणम्।
अधस्तात्तस्थुषां शोक,—नाशायाशोकभूरुहः।। 223।।

उच्चआत्मा अज्ञानी होने पर भी अपने आश्रित व्यक्तियों को अपने गुणों का दान देता है। अशोक वृक्ष अपने तल में रहे हुए प्राणियों के शोक का नाश करता है।

लभन्ते वाग्मिनो मानं , दुर्दशायां स्थिता अपि।
कीरः पन्जरसंस्थोऽपि, हारिगीरिति पाठ्यते।। 224।।

दुर्दशा में होने पर भी बोलने में चतुर व्यक्ति सम्मान को प्राप्त करते है। पिंजरे मे रहा तोता हरि नाम का पाठ करता है एवं प्रशंसा प्राप्त करता है।

आस्तां वाक् प्रीतये प्रोच्चै,—र्निध्यातोऽपि कलानिधिः।
किमीक्षितो मुदं दत्ते, न चकोरदृशां शशी ?।।225।।

ज्ञानी व्यक्तियों की वाणी तो दूर रही उनका ध्यान भी प्रीति करने वालो के लिए आनन्द का कारण होता है। चन्द्रमा को देखने पर चकोर की दृष्टि क्या आनन्द को प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् आनन्दित हो जाती है।

अयुक्तमपि युक्तं त,—द्यच्चिरन्तनवाङ्मये।
नदी व्योमनि तत्रापि, सरोजिनीति संमतम्।।226।।

पुराने समय से चली आ रही अयुक्त बातों को भी युक्त मान लिया जाता है। आकाश में नदी है वहाँ भी कमलिनी है ऐसा स्वीकार किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विजिह्वाधिष्टितः स्वामी, न क्लेशाय कलावताम्।
कर्णाभ्यर्णस्थदृक्कर्णः, किमीशः शशिनो भिये?।।227।।

कलावान् व्यक्तियों के पास रहा हुआ सर्प उनके क्लेश के लिए नहीं होता है। शिव के कान के पास स्थित सर्प क्या चन्द्रमा के भय के लिए होता है ?

असंभाव्यमपि प्रोक्तं, पूर्वैः स्यादतिसूनृतम्।
पार्वती प्रस्तरापत्यं , सत्यमित्यवसीयते।। 228।।

पूर्वजों के द्वारा कहा गया असंभव असत्य भी सत्य माना जाता है। पार्वती पर्वत की पुत्री है ऐसा सत्य जाना गया है।

गुणाः सौन्दर्यशौर्याद्याः, साक्षरत्वं विना वृथा।
सौवर्णं स्यादपि स्वर्णं, किं विनाक्षरसंचयम् ?।।229।।

सुन्दरता, वीरता आदि गुण साक्षरता बिना (विद्याध्ययन बिना) व्यर्थ माने जाते है। क्या अक्षरों के (वर्णों के) संयोजन बिना स्वर्णिम होने पर भी सुवर्णता प्राप्त की जा सकती है ? अर्थात् नहीं।

महतां जननस्थान,–मुक्तिरुन्नतये भवेत्।
विन्ध्यत्यजां गजानां किं, नाराित्रकं नृपाजिरे?।।230।।

महान् व्यक्तियो की जन्मस्थान से मुक्ति उनकी उन्नति के लिए होती है। विन्ध्य पर्वत को छोड़ने वाले हाथियों की राजा नम्र होकर क्या आरती नही करते ?

सर्वतः स्याद्विनष्टोऽपि, गरीयान् गौरवास्पदम्।
यदश्मा ज्वलितस्तूर्णं, चूर्णोऽभूद् भूपवल्लभः।।231।।

सर्वतः नष्ट हो जाने पर भी महान् लोगों का गौरव श्रेष्ठ बना रहता है। जो पत्थर जलकर शीघ्र चूर्ण हो जाता है वह राजाओं को प्रिय होता है। (मणि आदि बहुमूल्य पत्थर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोषस्तिष्ठतु तद्भाजा,—मभ्यर्णमपि दुःखकृत्।
छिद्रयुक्तघटीपार्श्वे, झल्लरी यन्निहन्यते।।232।।

दोषी व्यक्ति के दोष तो दूर उनका संसर्ग भी कष्टप्रद होता है जैसे छिद्रयुक्त घटी के समीप रहने से झल्लरी मारी जाती है।

गुणिनामपि संसर्गो, दुर्मुखाणां गुणाय न।
शरे शरासनासक्ते, दृष्टा क्वाऽपि दयालुता?।।233।।

गुणवान व्यक्तियों का संसर्ग होने पर भी कटुभाषी व्यक्तियों को गुणप्राप्ति नहीं होती। बाण का धनुष के साथ संसर्ग होने पर भी क्या उसमें दया भाव कहीं देखा गया है ?

यशःशेषोऽपि तेजस्वी, भवेदर्थाय भूयसे।
न रूप्यस्वर्णयोः सिद्धिं, सूतः सूते मृतोऽपि किम्?।।234।।

तेजस्वी पुरुष के पास केवल यश ही अवशिष्ट रहने पर भी विपुल लाभ के लिए होता है। पारद (मृतप्राय) भस्मावस्था में भी क्या सोने एवं चाँदी की सिद्धि नही कराती है ?

प्रदत्तेऽनर्थमत्यर्थं , दुर्मखैः पक्षशालिता ।
पक्षवानेव यत् पत्त्री , परप्राणाऽपहारकृत् ।। 235।।

दुष्ट व्यक्तियों के द्वारा दूसरो के प्रति किया गया पक्षपात अत्यन्त अनर्थकारी होता है। पाँखो से युक्त बाण अन्य लोगों के प्राणों को हरण करता है।

तुंगवंशभवा नार्यः, पतिं दौःस्थ्ये त्यजन्ति न।
मुमुचे हिमवत्पुत्र्या, नग्नोऽपि किमनङ्गजित्?।।236।।

उच्चवंश में उत्पन्न हुई नारियां अपने पति का उसके दरिद्र होने पर भी त्याग नहीं करती हैं। हिमालय की पुत्री पार्वती ने क्या काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को जीतने वाले भगवान् शंकर को वस्त्रादि से रहित होने पर छोड़ दिया था ?

महात्मानो विरोधाय, संगभाजो जडात्मभिः।
चन्द्रयुक्ता ग्रहाः सर्वे, विवाहेऽनर्थहेतवः।। 237।।

मूर्ख व्यक्तियों का संग महान व्यक्तियों के संकट के लिए होता है। चन्द्र से युक्त ग्रह विवाह में अनर्थ के हेतु होते हैं।

यन्त्रणं युक्तिमज्जाने, स्तब्धानां चासितात्मनाम्।
यत्सरोजदृशां बन्धः कुचेषु चिकुरेषु च।। 238।।

ग्रन्थकार कहते है – मैं अपवित्र मन वाले मूर्ख व्यक्तियों को अनुशासित करने को समीचीन मानता हूँ। क्या कमल–नयनी युवतियों के कुचों एवं केशों का बन्धन उपयुक्त एवं सौन्दर्य वाहक होता हैं।

मूर्खाणामधिकत्वं स्या,–दुत्तमेषु प्रमादिषु ।
जगज्जातजडं जज्ञे, यत्सुप्ते पुरूषोत्तमे।। 239।।

उत्तमपुरुषों के प्रमादी होने पर मूर्खों की अधिकता हो जाती है। उत्तमपुरुषों के पुरुष सोने पर (देवशयनी एकादशी) होने पर जल की व्याप्ति (जल की अधिकता) हो जाती है।

बुद्धिमानपि निर्बुद्धेः, संगतः स्याज्जगद्भिये।
वर्यकार्यनिषेधी यद् , गुरूः केशरिणं गतः।। 240।।

निर्बुद्धि के संग रहे बुद्धिमान व्यक्ति भी जगत् के संताप के लिए होते है। सिंह राशि में गया हुआ गुरु श्रेष्ठ कार्य के लिए निषेधी माना जाता है।

धिग् दुष्टान् यान्ति स(य)त्संगा,–न्महात्मानस्तदात्मताम्।
प्रययौ पापतां पाप,–ग्रहसंगेन यद् बुधः।। 241।।

उन दुष्ट आत्माओं को धिक्कार है जिनके कारण महान व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी दुष्टता की ओर जाते है। पापी ग्रहों के संग बुध ग्रह पापी बन जाता है।

गुणः स्वल्पोऽपि संपत्त्यै, सखे ! दोषजुषामपि।
सर्वांगैर्भग्नभद्राया, भद्रायाः पुच्छमृद्धिकृत्।। 242।।

दोष को धारण करने वाले व्यक्तियों के अल्पगुण भी समृद्धि के लिए होता है। जैसे भद्रा के सभी अंग भग्न होने पर भी भद्रा की पूँछ वृद्धि (धन आदि) कराने वाली होती है।

दौःस्थ्यं दोषास्पदं शश्वत्, स्यात् कलाशालिनामपि।
....कान्तोऽप्यभवत्पापः, शशांकः क्षीणवैभवः।। 243।।

कलाशाली व्यक्तियों का भी दौर्भाग्य में दोष का स्थान सदा रहता है। दौर्भाग्य होने पर चन्द्रमाँ का वैभव भी क्षीण होता है एवं कान्ति भी समाप्त हो जाती है।

कृत्यं भवति नीचानां , यच्च नीचैर्न चेतरैः।
कारूणामर्थसिद्धिर्या, खरैः सा च न सिन्धुरैः।।244।।

नीच व्यक्तियों का कार्य नींच के द्वारा ही होता है। अन्य सज्जन व्यक्ति द्वारा नहीं। कारू की सिद्धि गधों से ही होती है हाथियों से नहीं।

तुच्छानां वक्रता तुंगै,–र्निराकर्तुं न शक्यते।
केशेषु पतितो ग्रन्थिः, कुंजरैः किं निरस्यते?।।245।।

तुच्छ व्यक्तियों की वक्रता का निराकरण करने के लिए उच्च व्यक्ति समर्थ नहीं होते हैं। बालो में पड़ी गाँठ क्या हाथियों से नष्ट होती है ?

कदाचिन्नातिनीचानां, संस्कारोऽपि गुणावहः।
क्षालनं कम्बलानां स्या,–द्यद्विनाशाय सत्वरम्।।246।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् नीच व्यक्तियों को शिक्षा भी दी जाय तो वह भी गुणों को नष्ट करने वाली होती है। जैसे कम्बलों का प्रक्षालन उनके शीघ्र विनाश के लिए ही होता है।

न सत्संगगुणारोपः शुद्धेऽप्यधमवंशजे ।
किं बिम्बावस्थितिः क्वापि, भवेत् स्वच्छेऽपिकम्बले? ।247।।

अधमवंश मे उत्पन्न हुए शुद्ध व्यक्तियों में भी सज्जनों का संग एवं गुणों का आरोपण नहीं होता है। कम्बल स्वच्छ होने पर भी क्या शीशे मे रखा जाता है?

शुद्धात्मानो विधीयन्ते, नाऽधमैः स्वसमाः समे ।
कम्बौ किमितरैर्वर्णै ,–र्निधीयन्ते निजा गुणाः? ।।248।।

शुद्धात्मा स्वयं अधम के साथ मिलकर कार्य नहीं करते है। चितकबरी वस्तु इतर वर्ण के साथ क्या स्वयं के गुणों को रख सकती है ?

जडात्मसु स्थिता व्यर्थं, महत्यपि महस्विता ।
व्यनक्ति स्वपरव्यक्तिं, नेन्दोर्भा भासुराऽपि यत् ।।249।।

जड़ बुद्धिवाले व्यक्तियों में स्थित महान् गुणगणों (दया उदारता आदि विशाल गुणों) की विद्यमानता निरर्थक मानी गयी है। चन्द्रमाँ की आभा अत्यन्त दीप्तिमान् (शीतलतादायक) होने पर भी स्वता एवं परता को प्रकट नहीं कर सकती है।

जातौ सदृशि सर्वत्र, गोत्रमत्रोन्नतिप्रदम् ।
पशुत्वे सति सिंहस्यो,–पमा रम्या शुनश्च न ।।250।।

सर्वत्र जाति मे समान होने पर भी गौत्र से उन्नति प्राप्त होती है। पशु होने पर भी सिंह की उपमा रम्य होती है, कुत्ते की नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवेन्मान्यः कठोरोऽपि, मध्ये मधुरिमाङ्कितः ।
नालिकेरफले चक्रु,—र्नादरं कर्कशेऽपि के ?।। 251।।

कठोर होने पर भी जिनके अन्दर मधुरता है वे लोग सम्मान के पात्र होते हैं। कर्कश होने पर भी नारियल के फल में अन्दर का मण्डल क्या आदर के योग्य नहीं होता है ?

सिद्धे कार्ये जनेषूच्चै,—र्महानपि तृणायते ।
बध्यते मुकुटः स्तम्भे , विवाहानन्तरं न किम्?।।252।।

जन समुदाय में कार्य की सिद्धि होने पर महान् व्यक्ति भी तृण के समान माना जाता है। विवाह के सम्पन्न हो जाने पर क्या मुकुट स्तम्भ पर नहीं बांधा जाता है ?

गुणस्तुल्यास्पदेऽपि स्या,—न्निर्मले न ह्यनिर्मले ।
यत्सर्पिः प्राप्यते लोकै,—र्गोरसे न च गोमये।। 253।।

वस्तु के स्थान की समानता होने पर भी गुण निर्मल स्थान में ही रहता है। अनिर्मल (गन्दा या अस्वच्छ) स्थान में नहीं मिलता है। संसार मे मनुष्यों को दूध में ही घी मिल सकता है गोबर में नहीं (जबकि ये दोनो गाय से प्राप्त होते है)

दृश्यन्ते बहवः स्वल्प,—सत्त्वा नो सत्त्वशालिनः ।
पदे पदे पर्यटन्ति, भषणा न मृगद्विषः।। 254।।

अल्पमात्रा मे सत्त्वशाली व्यक्ति विपुलता से दिखलाई पड़ते हैं सत्वसम्पन्न व्यक्ति नहीं। श्वान (कुत्ते) तो हर जगह मिले जाते हैं परन्तु सिंह बहुत ही विरलता से मिलते हैं।

संपदप्यल्पसत्त्वानां, स्यादवश्यमनर्थकृत् ।
कस्तुरी ननु कस्तूरी,—मृगाणां मृत्युकारिणी।। 255।।

अल्पसत्त्वशाली (कम हिम्मतवाले) प्राणियों की सम्पत्ति भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनर्थकारी होती है। हिरण की नाभि में रहने वाली कस्तूरी ही वास्तव में उसकी मृत्यु का कारण मानी जाती है।

इह हेतुरनर्थाना,—मप्रस्तावे गुणज्ञता।
गीतेषु रसिकैर्व्याधा,—दवापि मरणं मृगैः।। 256।।

अनवसर पर गुणज्ञता भी अनर्थ का कारण बन जाती है। जैसे गीतों में रसिक हिरण मरण को प्राप्त होते हैं।

महिमा मूलतो याति, कुस्थानस्थितवस्तुनः।
कस्तूरी तिलकं पङ्क—मेव पामर मूर्धनि।। 257।।

कुस्थान में स्थित वस्तुओं की महिमा मूल से चली जाती हैं। पामरलोगों के सिर पर लगा केसर का तिलक भी कीचड़ के समान है।

निर्गुणा गुणिभिः साकं, संगता यान्ति गौरवम् ।
न धान्यैर्मिलिता लोकै,—र्गृह्यन्ते किमु कर्कराः?।।258।।

निर्गुण व्यक्ति भी गुणवानों के साथ गौरव को प्राप्त करते हैं। धान से मिले हुए (कंकड़) क्या लोगों द्वारा ग्रहण नहीं किये जाते हैं?

तेजस्वी ननु तेजस्वि,—संगे राजति नाऽन्यथा ।
यथा भाति मणिः स्वर्णे, न तथा त्रपुणि स्थितः।।259।।

तेजस्वी व्यक्ति निश्चित तेजस्वी व्यक्ति के साथ ही शोभायमान होता है अन्य के संग नही। मणि स्वर्ण के आभूषणों के बीच में ही शोभायमान होती है रॉगे (एक प्रकार की अमूल्य धातु) में स्थित होने पर नहीं।

व्रजन्नपि जडः स्थान,—विनाशाय ध्रुवं भवेत् ।
नेत्रयोर्निपतन्नीरं, हानये किं न तत्त्विषाम्?।।260।।

स्थान से च्युत् होता हुआ जड़ भी निश्चित ही विनाश के लिए होता है। नेत्रों से गिरा पानी क्या कान्ति का नाश नहीं करता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपि तुंगात्मनां संपद्, बहिर्भूताऽभिभूतये ।
रदार्थमेव द्विरदा, निहन्यन्ते वनेचरैः ।। 261 ।।

बड़े लोगो की सम्पत्ति का प्रदर्शन उनकी पराजय के लिए होता है। हाथियों के दाँत बाहर होने पर ही वे हाथी भीलों द्वारा मारे जाते हैं।

वाग्मिनः किं प्रकुर्वन्ति, मिलिते मलिनात्मनि ?।
श्यामले कम्बले वर्णे,–रितरैः का प्रतिक्रिया ।। 262 ।।

मलिन आत्मा के मिलने पर बुद्धिमान् व्यक्ति क्या प्रतिक्रिया करता है ? अर्थात् नहीं। काले कम्बल में अन्य वर्ण मिलने पर क्या उसमें प्रतिक्रिया होती है ? अर्थात् नहीं।

जन्मस्नेहः सतां स्वीयै,–र्हन्यते दुर्मुखैः क्षणात् ।
तन्दुलानां तुषैर्मैत्री, निरस्ता मुशलेन यत् ।। 263 ।।

सज्जनों के स्नेह को कटुभाषी व्यक्ति क्षण में स्वयं ही नाश कर देता है। चावल और तुष की मैत्री मूसल के द्वारा नष्ट हो जाती है।

मन्दा भवन्ति सालस्याः, कलावन्तस्तु सोद्यमाः ।
त्रिंशन्मासान् शनिरास्ते, राशौ चेन्दुर्दिनद्वयम् ।।264 ।।

मूर्ख व्यक्ति आलसी होता है। तथा कलावान् व्यक्ति उद्यमी होता है। एक राशि में शनि तीस मास रहता है और चन्द्रमाँ दो दिन रहता है।

कोमलानां कठोरान्तः,–पतितानाममंगलम् ।
धान्यानां यद् घरट्टान्त,–र्गतानां कियती स्थितिः? ।।265 ।।

कठोर के भीतर पतित कोमल वस्तु का अमंगल होता है। घट्ट के अन्दर गये धान की स्थिति कितनी होती है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्तः स्युः संगताः सन्तः, श्रिये श्यामात्मनामपि।
किं केशाः कलयामासुर्न शोभां संश्रिताः सुमैः ?।।266।।

मलिन आत्माओं के बीच मे सन्त व्यक्ति शोभित होते हैं। क्या काले बालों में पुष्प शोभित नहीं होते हैं ?

प्रायो न हित(निहत?) एव स्यात्, कठोरात्मा रसप्रदः।
यद् भग्नमेव दत्ते द्राग्, नालिकेरफलं जलम्।।267।।

प्रायः उच्चात्मा आहत होने पर भी रस प्रदान करते हैं। नारियल तोड़ने पर भी शीघ्र जल प्रदान करता है।

तादृग् भोक्तरि नोत्कर्षो, यादृग् भोग्ये प्रवर्तते।
न वेषाडम्बरस्तादृक्, पुंसां यादृग् मृगीदृशाम्।।268।।

जब तक भोक्ता भोग में प्रवृत्ति करता है तब तक उसका उत्कर्ष नहीं होता है। व्यक्ति जब तक स्त्री में मुग्ध बना रहता है तब तक उसे अपने वेश की महत्ता का ज्ञान नहीं होता है।

यद्येषां निकटं प्राय,–स्तत्तेषां वल्लभं भवेत्।
स्तनान्तःस्थितपयसां, स्त्रीणामेव पयः प्रियम्।। 269।।

प्रायः जो जिसके निकट होता है वह उसको प्रिय होता है। जैसे दूध स्त्रियों के स्तन में होने से प्रायः उनको प्रिय होता है।

न स्यात्तेजस्विनः शक्ति,–स्तादृग् यादृक् कलावतः।
तादृग् नांशोर्बले शुद्धं, दिनं यादृग् निशापतेः।।270।।

तेजस्वी की शक्ति वैसी नहीं होती है जैसी कलावान् की होती है। चन्द्रमाँ की किरणें जितनी उज्ज्वल होती है उतनी सूर्य की किरणें उज्ज्वल नहीं।

महिमानमक्षराणां, न वयं वक्तुमीश्महे।
यत् कलिर्गालिदाने स्या,–दाशीर्वादे च सौहृदम्।।271।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षरों की महिमा को हम कहने के लिए समर्थ नहीं है। गाली देने पर झगड़ा होता है और आर्शीवाद देने पर मित्रता होती है।

का भवेदुन्नतिः पुंसां, स्वगुणस्तवने स्वयम् ?।
रसस्य संभवः क्वापि, किं निजाधरचर्वणे?।।272।।

स्वयं के गुणों की प्रशंसा स्वयं ही करे उन पुरुषों की क्या उन्नति। क्या कभी भी अपना होंठ चबाने से रस का स्वाद सम्भव होता है ?

क्रियन्ते स्वमयाः सद्भि,—र्मृदवश्च न हीतरे।
धीयते स्वगुणः पुष्पै,—स्तिलेषु नो पलेषु च।। 273।।

सज्जन व्यक्तियों से ही मधुरता उत्पन्न होती है अन्य से नहीं। तिल के पौधे में पुष्पों द्वारा ही गुण ग्रहण किये जाते हैं वह गुण तिल एवं पुष्प में नहीं होते हैं।

तुच्छत्वेऽपि मृदुत्वं स्यात्, परर्द्धिग्रहणक्षमम्।
पुष्पगन्धस्तिलैरेवा,—दीयते न दृषत्कणैः।। 274।।

मृदुता तुच्छ होने पर भी पर ऋद्धि ग्रहण करने के योग्य होती है। तिल के पौधे में कोमल पुष्प ही सुगंध देता है पत्थर के कण के समान तिल नहीं।

लघीयानपि शिष्टात्मो,—पकाराय महीयसाम्।
अब्धेरपामपाराणां, किं वृद्धयै नोदितः शशी?।।275।।

शिष्टात्मा छोटा होते हुए भी अपने से बड़े व्यक्तियों के उपकार के लिए होता है। उदित हुआ चन्द्रमाँ क्या समुद्र की वृद्धि के लिए नहीं होता है ?

कुपुत्रैः कुलविध्वंसो, जातमात्रैर्विधीयते।
मूलादुन्मूलनाय स्यात्, कदल्यां फलसंभवः।। 276।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुपुत्र कुल का नाश करने के लिए ही जन्म लेते हैं। क्या कदली (केले) के वृक्ष में उत्पन्न हुए फल उसका मूल से नाश करने के लिए नहीं होते है ?

धने सत्यपि तेजस्वी, नैधते सुहृदं विना।
पिधानरूद्धवातः किं, दीपः स्नेहे सुदीप्तिमान्?।।277।।

धन होते हुए भी यदि मित्रता के भाव नहीं हो तो तेजस्वी व्यक्ति उस ओर नहीं जाते हैं। क्या ओट से हवा–रुद्द दीपक तेल या घी होने पर भी प्रकाशमान हो सकता है ?

संपतौ च विपतौ च, महान् स्यात् समवैभवः।
उदयेऽस्तमने चाऽपि, स्पष्टमूर्तिस्त्विषांपतिः।।278।।

महान् व्यक्ति का वैभव सम्पत्ति और विपत्ति में समान होता है। सूर्य उदय एवं अस्त के समय पर समान ही दिखाई देता है।

मूर्खाणामग्रतो वाचां, विलासो वाग्मिनां मुधा।
लास्यं वेषसृजां वन्ध्यं, पुरतोऽन्धसभासदाम्।। 279।।

मूर्खों के आगे पंडित व्यक्तियों की वाणी का विलास व्यर्थ है। अन्धों से भरी सभा के सामने वेष सजकर नाचना व्यर्थ है।

सुखदुःखे समं स्यातां, सुहृदां सहवासिनाम्।
सहैवोन्नतिपतने, स्तनयोरेकहृत्स्थयोः।। 280।।

सच्चेमित्र की मित्रता सुख और दुख में समान रूप में स्थायी होती है। उन्नत अथवा पतन दोनो अवस्थाओ में स्तन सदैव हृदय पर ही स्थित होते है।

संबन्धोऽपि दुराचार,–चंचवः स्युरपण्डिताः।
का सुता का स्वसा काऽम्बा, पशूनामविवेकिनाम्?।।281।।

संबंध होने पर भी मूर्ख व्यक्ति जानते हुए दुराचार करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पशुओं को कौन पुत्री, कौन बहन, कौन माता आदि का विवेक नही होता है।

प्रातिवेश्मिकदुःखे स्यु,—र्मृदूनामसमाधयः।
जातायां मूर्ध्नि पीडायां, किं दृशोर्न त्विषाम्पतिः?।।282।।

पड़ोसी को दुख होने पर कोमल व्यक्ति को असमाधि हो जाती है। सूर्य को देखने पर क्या सिर में पीड़ा उत्पन्न नहीं होती है?

सेवाप्रह्वं भवेद्विश्वं, निष्ठुरेऽपि धनाद्भुते।
कीटकैः क्लृप्तपीडायां, केतक्यां किमु नादरः?।।283।।

निष्ठुर होने पर भी धनवानों की सेवा में सभी झुकते है। कीटों द्वारा केतकी मे पीड़ा उत्पन्न करने पर भी क्या आदर नहीं किया जाता है ?

शुद्धात्मनि गतेऽपि स्यात्, स्थानं तद्भावभावितम्।
किं विक्रीतेऽपि कर्पूरे, नास्पदं सौरभान्वितम्?।।284।।

शुद्धात्मा के चले जाने पर भी उस स्थान की पवित्रता बनी रहती है। क्या कपूर बेच देने पर भी उस स्थान को सुरभित नहीं करता है।

नोज्झन्ति तद्गुणाः स्थानं, गतस्याऽपि दुरात्मनः।
गन्धस्त्यजति किं पात्रं, निष्काशितेऽपि रामठे?।।285।।

दुरात्मा के चले जाने पर भी उस स्थान से दुर्गुणता का प्रभाव नहीं जाता है। क्या हींग को निकालने पर पात्र की गंध चली जाती है ? अर्थात् नहीं जाती है।

अतिप्रेयान् महात्माऽपि, भवेन्नावसरं विना।
यत्तक्रोदनवेलायां, शर्करा कर्करायते।। 286।।

अवसर के बिना महान् व्यक्ति भी प्रिय नहीं लगता है। क्रोध के अवसर पर शक्कर भी कंकर के समान लगती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकारात् स्यादर्थस्य, प्रतीतिः प्रतिमान्विता।
रणे राजन्ति मातंगा, अत्र कुंजरनिर्णयाः।। 287।।

साहसी व्यक्ति निश्चय ही अधिकारपूर्वक अर्थ की उपलब्धि करता हैं। हाथी अपने दृढ़ निर्णय के आधार पर ही रण में शोभायमान होते हैं। यही पर मातंग (चाण्डाल एवं कुंजर) का निर्णय हो जाता है।

सच्छिद्रै रसिकात्मभ्यः, क्वचिन्नादीयते रसः।
नीरं नीराशयेभ्यः किं, चातकैः परिभुज्यते ?।। 288।।

दुर्गुण–सम्पन्न अरसिकों द्वारा रसिक जनों से रस (आनंद) कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। क्या चातक जलाशय से जल की आशा करता है ? अर्थात् कदापि नहीं, क्योंकि वह तो स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादलों से ही रस (जल) की याचना करता है।

अहो ! तेजस्विनां कापि, कला कौशलपेशला।
चिन्ता चिन्तानिवृत्तिश्च, दृग्भ्यामेवाऽवगम्यते।। 289।।

अरे ! तेजस्वी व्यक्ति की कार्यकुशलता और चतुराई तो देखो! चिन्ता और चिन्तानिवृत्ति दोनों नेत्रों से ही जान लिये जाते हैं।

सेवा तिष्ठतु दुष्टानां, दर्शनादपि भीतयः।
प्रेक्षिता अपि किं सर्पाः, न संत्रासस्य कारणम्?।।290।।

दुष्ट व्यक्तियों की सेवा तो दूर रही उनका दर्शन भी भय के लिए होता हैं। क्या सर्पों का देखना ही त्रास का कारण नही होता है?

अकीर्तिः पापसंगेऽपि, लघोः स्यान्न गरीयसः।
विनश्येद्वायसैः पीते, तोये कुम्भश्च नो सरः।।291।।

पापी का संग होने पर छोटे लोगों की अपकीर्ति होती है, बड़ों की नहीं। कौओं द्वारा पानी पीने पर घड़े का पानी बिगड़ता है, तालाब का नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपि सत्सु कलावत्सु, पूज्यते पदमर्चिषाम्।
नेन्दौ सत्यपि किं प्रात,–र्नमस्कुर्वन्ति भास्करम्? ।।292।।

कलावान् पुरुष एवं सज्जन–पुरुष दोनों के होने पर सज्जन व्यक्तियों के पैर पूजे जाते है। प्रातः में सूर्य और चन्द्रमाँ दोनों के होने पर सूर्य को नमस्कार किया जाता है।

सत्यामप्यन्यसामग्र्यां, न स्यात् कालं विना फलम्।
आविर्भूयाद् घृते दुग्धात्, किं विना दिवसान्तरम्? ।।293।।

सामग्री के उपलब्ध होने पर भी काल के बिना फल नहीं मिलता है। क्या दूध से घी दिन के अन्तर के बिना उपलब्ध होता है ?

कर्कशेष्वपि या तस्थौ, सतां वाक् सा च नाऽन्यथा।
ये वर्णा ग्रावसूत्कीर्णा, भवेत्तेषां किमत्ययः? ।।294।।

कठोर लोगों में भी सज्जनों की वाणी स्थिर रहती है, वह अन्यथा नही होती है। पत्थरों में जो रंग फैले हुए हैं क्या उनका नाश होता है ?

लघूनामपि बाहुल्यं, दोष्मतामप्यशर्मकृत्।
दुःसहाः शकटोद्वाहे, धुर्याणां धूलयो न किम्? ।।295।।

छोटा होने पर भी दोषी व्यक्ति की अधिकता दुखकारी होती है। गाड़ी वहन करने पर बैलों को अधिक उड़ती हुई धूल क्या दुःसह्य नहीं लगती है ?

अन्तःसारे गतेऽप्युच्चैः, शुद्धात्मा मानमर्हति।
हृतेऽपि नवनीते किं, न लोकैस्तक्रमादृतम् ? ।।296।।

उच्चता के भावों से भरे हुए अन्तस्थल वाला शुद्धात्मा सम्मान के योग्य होता है। अन्दर मक्खन के होने पर क्या लोक में छाछ को स्वीकार नहीं किया जाता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मसात्कुरुते सिद्धिं, सर्वतः सरलः पुमान्।
कूपस्तम्भो न किं लेभे, यानपात्रे प्रधानताम्?।।297।।

सरल पुरुष सभी स्थान पर सिद्धि को प्राप्त करते हैं। जहाज में लगा कूपस्तम्भ क्या प्रधानता को प्राप्त नहीं करता है ?

सरलोऽपि मुखे दुष्ट,–स्त्रासकृज्जगतां मतः।
कदाऽपि कोऽपि न क्वाऽपि, कुन्ततः कलयेद्भियम्?।।298।।

दुष्ट व्यक्ति मुखमण्डल से सरल होने पर भी संतापकारी होते हैं। ऐसी जगत् की मान्यता है। क्या कोई भी व्यक्ति कभी भी, कहीं भी सीधे सरल दिखने वाले भाले (पखदार बाण) से भय को धारण नहीं करता है ?

पापात्मानो निजार्थाय, परेषामसुखेच्छवः।
घृताल्लाभाय तत्स्वामी, गवामिच्छति तुच्छताम्।।299।।

पापी व्यक्ति स्वयं के स्वार्थ के लिए दूसरों के असुख की इच्छा करता है। घृतलाभ के लिए गायों का स्वामी दूध की तुच्छ इच्छा करता है। उस गाय के लिए दूध बचाने की रञ्च मात्र भी इच्छा नहीं करता है।

गते सारे मृदूनां स्या,–दवस्थास्पदमश्रियाम्।
त्यक्तस्नेहास्तिलाः पश्य, खलतां प्रतिपेदिरे।।300।।

स्थित–मधुरता के चले जाने पर वह स्थान अकल्याणकारी होता है। तैल का त्याग किये हुए तिल खलता को प्राप्त करते हैं।

अल्पीयसाऽपि पापेन, विनश्येत् सुकृतं बहु।
दुग्धं कांजिकलेशेन, प्रस्फुटेदतिबह्वपि।। 301।।

अल्प पाप से भी बहुत पुण्यनष्ट हो जाता है। बहुत सारा दूध थोड़ी सी खटाई के द्वारा फट जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यसनेऽपि विमुंचन्ति, स्वकीया नहि कर्हिचित्।
शुष्के सरसि तत्रैव, म्लानाः पंकजपङ्क्तयः।। 302।।

कभी–कभी दुख की परिस्थिति आने पर भी स्वजन लोग साथ नहीं छोड़ते है। तालाब के सूख जाने पर भी म्लान कमल की पत्तियाँ वहीं पर रहती हैं।

तनवः पतिताः क्लेशे, त्यजन्ति चिरसौहृदम्।
जन्मस्नेहः क्षणात्त्यक्तो, यन्त्रान्तःपतितैस्तिलैः।। 303।।

क्लेश में पड़कर तुच्छ व्यक्ति लम्बे समय की मित्रता का त्याग कर देते है। यन्त्र के भीतर गिरकर तिल जन्म के साथी तेल का क्षण में त्याग कर देता है।

अल्पैर्निर्याति नोपायै,–र्नवीनाऽपि तमोमतिः।
यत् सद्यस्कोऽपि किं नीली,–रागोऽद्भिरगमत्क्षितिम्?।।304।।

नवीन होने पर भी तामस बुद्धि कतिपय उपायों द्वारा भी निकलती (बदलती) नहीं है। क्योंकि तात्कालिक नीलापन जल द्वारा क्या दूर किया जा सकता है?

प्रचुरा प्रकृतिः प्रायः, प्रेक्ष्यते पापपूरिता।
स्त्रीरूपो वाऽयं पुंरूपो, द्विधा दृष्टो नपुंसकः।।305।।

पापी व्यक्ति में प्रायः पापमय प्रकृति अधिकता में दिखाई देती है। स्त्रीरुप एवं पुरुषरुप दोनों प्रकार के रूप नपुंसक में दिखाई देते हैं।

अपि स्वच्छात्मनां नीच,–गामितां हन्ति कोऽपि न।
वारिता केन किं क्वाऽपि, सलिलानामधोगतिः?।।306।।

नीच मार्ग पर गई हुई निर्मल आत्माओं को कोई भी नहीं रोक सकता है। नदियों के अधोगति (नीचे) की ओर जाने पर क्या कहीं भी किसी के द्वारा रोका गया ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दद्दशेऽपि व्यथायोगे, पुरस्तात् साहसी भवेत्।
अगत्वाऽपि प्रहारेषु, पाण्योर्युगलमग्रतः।। 307।।

दुख का योग दिखाई देने पर भी साहसी व्यक्ति उसका पराक्रम से सामना करते हैं। प्रहार होने पर भी पीछे न जाकर भी भुजा–युगल सामने की ओर आ जाते हैं।

अन्तःसारोऽप्यशुद्धात्मा, न क्वचिद्वल्लभो भवेत्।
काम्यश्चाण्डालकूपः किं, भूयसाऽप्यम्भासा भृतः?।।308।।

भीतर से सत्त्व सम्पन्न होने पर भी अपवित्र आत्मा वाले व्यक्ति कभी भी किसी के प्रिय नहीं बन सकते हैं। क्या विपुल जल परिपूर्ण चाण्डालों का कूप (कूआ) किसी के द्वारा काम्य (अभिलाषित) हुआ है?

सर्वे धर्माः पिधीयन्ते, दोषेणैकेन भूयसा।
किं नाशं नेतरे वर्णाः, प्रयान्ति मलिनाम्बुना?।।309।।

प्रायः एक दोष के कारण सभी गुण ढँक जाते है। मलिनपानी द्वारा अन्य वर्ण मिलाने पर क्या उनका विनाश नहीं होता है?

दुःस्पर्शाः पापवृत्तीनां, जडे स्यान्नेतरात्मनि।
काकोत्सृष्टमपानीयं, पानीयं न पुनर्घृतम्।। 310।।

पाप वृत्तियों का दुस्स्पर्श मूर्ख व्यक्ति पर ही होता है। अन्य बुद्धिमान् व्यक्ति पर नहीं। कौआ त्याग किया हुआ और नहीं पीने योग्य पानी का पान करता है शुद्ध घी का नहीं।

न स्यान्मध्यस्थता शस्ता, कुस्थानैर्निर्मिता सती।
यद् भवेत् प्राणवान् पण्ड,–स्तुन्दे मध्यस्थतां दधत्।।311।।

कुस्थान द्वारा निर्मित उदासीनता प्रशंसनीय नहीं होती है, जैसे नपुंसक व्यक्ति मुख पर रही हुई उदासीनता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नासन्नेऽपि रतिः पापे, तुंगे दूरेऽपि चादरः।
निष्कास्यते गृहादोतु,—र्वनाच्चानीयते करी।। 312।।

पापी व्यक्ति के समीप मे होने पर भी उससे राग नहीं होता है। उच्च व्यक्ति के दूर होने पर भी आदर होता है। घर से बिल्ली को बाहर निकाला जाता है। और वन से हाथी को लाया जाता है।

गुणिसंगे कृते नून,—मन्याः पुण्योपलब्धयः।
चीरे परिहितेऽन्येषां, शृंगाराणां परिग्रहः।। 313।।

गुणिजनों का संग किये जाने पर वह निश्चित ही अन्य व्यक्तियों की पुण्योपलब्धि के लिए होता है। स्त्रियों द्वारा किया गया सिंदूर का संग अन्य (पुरुष) के हित के लिए होता है।

विनोपायेन वैदग्ध्यं, शिक्ष्यते सन्निधौ सताम्।
मुधैवामोदलब्धिः स्या,— न्न किं सौगन्धिकापणे?।।314।।

सज्जन व्यक्तियों के सानिन्ध्य में बिना प्रयत्न के ही निपुणता की शिक्षा प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार सुगन्धित वस्तुओं की दुकान में बिना प्रयत्न के ही क्या खुशबू (प्रसन्नता) की प्राप्ति नहीं होती है ?

एकोऽपि सुमना दत्ते, यं गुणं तं न पार्थिवाः।
एकपुष्पेण सौरभ्यं, यन्न रत्नशतेन तत्।। 315।।

एक संत के द्वारा जो गुण प्रदान किये जाते हैं वे अनेक राजाओं से भी प्राप्त नहीं होते है। जो सौरभ एक पुष्प से प्राप्त होती है वह सौ रत्नों द्वारा भी नहीं मिलती है।

जातिसाम्येऽपि सर्वत्र, संपत्तिरतिरिच्यते।
तरुत्वेऽप्यन्यवृक्षेभ्य,—श्चम्पको यद्विशिष्यते।। 316।।

जाति समान होने पर भी सभी स्थानों पर सम्पत्तिशाली व्यक्तियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्रगति होती है। सभी वृक्षों में वृक्षत्व समान होने पर भी चम्पा का वृक्ष विशेष माना जाता है।

गुणमुक्ताः स्वयंपापाः, परच्छिद्रगवेषिणः।
बाणा बाणासनान्मुक्ता, निदर्शनमिहाऽभवत्।। 317।।

गुण से मुक्त हुआ अर्थात् गुण से रहित पापी व्यक्ति दूसरों के दोष खोजता है। इसका उदाहरण है धनुष से मुक्त हुआ बाण।

दौष्कर्यं जायते तुंगा,—च्छ्रयतां न च मुंचताम्।
चिन्त्याऽत्र शैलशृंगेषु, क्रियाऽऽरोहावरोहयोः।।318।।

दोष उत्पन्न होने पर आश्रय देने वालों के बढ़ जाते है। छोड़ने वालों के नहीं। पर्वत की चोंटी पर आरोह एवं अवरोह दोनों ही क्रिया होती है।

सर्वशक्त्याश्रितोऽनर्थ,—हेतुः स्वोऽपि जडाशयः।
स्यादन्तःपतितानां किं, कूपः स्वोऽपि न मृत्यवे?।।319।।

सर्वशक्तिवान् के आश्रित होते हुए भी मूर्ख व्यक्ति स्वयं ही अपने अनर्थ का कारक होता है। कूप के अन्दर गिरे हुए व्यक्तियों के लिए उनके स्वयं का कूप भी क्या उनकी मृत्यु का कारण नहीं होता है ? अर्थात् होता है।

यदागमे भवेद्वृद्धि,—स्तन्नाशे चार्तिरर्हति।
यौवनेऽभ्युन्नतौ तस्मिन् गते च पतितौ स्तनौ।।320।।

जब सम्पन्नता की वृद्धि होती है तब प्रसन्नता होती है और उसका नाश होने पर दुख का कारण बन जाती है। यौवनावस्था मे कुचौं की उन्नति होती है और वृद्धावस्था में उसी उन्नती के चले जाने पर दुख होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करोति गुणवानेवो,–पकारं सर्वदा सखे !।
ग्रीष्मे प्रावृषि शीते च, त्राणकृत् पट एव यत्।। 321।।

हे सखे ! गुणवान् व्यक्ति तो हमेशा उपकार ही करता है। ग्रीष्मऋतु एवं शीतऋतु में कपड़ा ही रक्षण करने वाला होता है।

ज्योतिष्मांश्छिद्रलीनोऽपि, स्यादणूनां प्रसिद्धये।
यज्जालान्तरगे भानौ, ज्ञायन्ते रेणवोऽणवः।। 322।।

ज्योतिमान् छिद्र से युक्त होने पर भी सूक्ष्म अणुओं की प्रसिद्धि करता है। सूर्य के उदय होने पर छिद्र अथवा खिड़की से आने वाला प्रकाश धूल के कणों का ज्ञान कराता है।

लघीयसाऽपि सुहृदा, मिलितेन बलोन्नतिः।
फूत्कारेण हि सप्तार्चिः प्राणपुष्टिं बिभर्ति यत्।।323।।

मित्र चाहे छोटा भी हो उसके मिलने से हमारे आत्मबल की उन्नति होती है। ठीक उसी प्रकार छोटी सी फूत्कार भी अग्नि की प्राणपुष्टि (प्रज्वलित) करने वाली होती है।

क्वचिदाह्लादयेद्विश्व,–मपि जाड्यं कलावताम्।
मुदे निशि न किं ग्रीष्मे, शीता अपि विधोः कराः?।।324।।

कभी–कभी कलावान् व्यक्तियों की शीतलता भी विश्व के आह्लाद के लिए होती है। ग्रीष्म ऋतु की रात्री में चन्द्रमाँ की शीतल किरणें क्या प्रसन्नता के लिए नहीं होती है ?

सुखचिह्नमपि स्थाना,–ऽभावाद् भवति कुत्सितम्।
हसन् बाढस्वरेण स्या,–दपमानपदं पुमान्।। 325।।

उचित अवसर के अभाव में सुख का प्रतीक भी दुखदाई हो जाता है। ऊँचे स्वर में अट्टहास करना लोगों के अपमान का कारण हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत्वाऽरेरपि विनयं, दुर्दशां गमयेत् सुधीः।
यद्वेतसः सरित्पूरं, नम्रीभूयातिवाहयेत्।। 326।।

बुद्धिमान व्यक्ति अपने शत्रु का सम्मान (विनय) करके भी दुरावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। वेतस (बेंत) नदी के पूर को झुक कर वहन करती है।

यज्जातं तद् बभूवैव, का कार्या तत्प्रतिक्रिया ?।
ब्रूहि भो ! मुण्डिते मूर्ध्नि, किं मुहूर्तावलोकनम्?।।327।।

जन्म हो जाने पर उसके मुहूर्त के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया करने की क्या आवश्यकता? मुण्डन हो जाने पर उसका मुहूर्त्त देखने का क्या लाभ?

सुखं च दुःखमथवा, यद् भूतं मा स्म चिन्तय।
लोकोक्तिरपि यद्विप्रै,—र्नातीता वाच्यते तिथिः।।328।।

सुख हो अथवा दुख जो बीत चुका है उसका चिन्तन नहीं करना चाहिए। यह लोकोक्ति भी है कि, ब्राह्मण द्वारा अतीत (जो बीत चुकी है) हुई तिथि नहीं कही जाती है।

कायेनैव श्रियां हानौ, वल्लभास्तुंगमूर्तयः।
अपि पुष्पफलाऽभावे, शाखाभिश्चन्दना मुदे।। 329।।

उच्च स्वभाव वाले व्यक्तियों की शारीरिक कान्ति की हानि होने पर भी वे सर्वप्रिय होते हैं। फूल एवं फल के अभाव में भी चन्दन का वृक्ष अपनी शाखाओं द्वारा प्रशंसित होता है।

लघूनां यत्र तत्राऽपि, निर्वृतिर्महतां न च।
शशानां यत्र तत्राऽपि, यच्छाया न च हस्तिनाम्।।330।।

छोटे व्यक्ति यहाँ—वहाँ (कहीं पर भी) सन्तोष का अनुभव कर लेते हैं, महान् व्यक्ति नहीं। खरगोश को यहाँ—वहाँ छाया प्राप्त हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाती है, किन्तु हाथियों को नहीं।

नीचमध्योत्तमेषु स्या,—त्तुल्या दृग् विशदात्मनाम्।
किं संक्रान्तिर्न शीतांशोः, कूटकूपयोधिषु? ।।331।।

नीच, मध्यम एवं उत्तम में पंडित व्यक्तियों की दृष्टि समान होती है। क्या चन्द्रमाँ का प्रतिबिम्ब घड़े, कूप, एवं समुद्र में समान रूप से नहीं पड़ता है ?

मयाऽस्थापीति मावज्ञा,—स्पदं तेजस्विनां कृथाः।
स्वयमुद्दीपितो दीपो, हतोऽङ्गुल्या न किं दहेत्।।332।।

मेरे द्वारा उच्चपद पर बैठाए व्यक्ति को यदि पद से च्युत् करु तो वह मेरी अवज्ञा करेगा। स्वयं ही दीपक जलाए और फिर अंङ्गुलि से बुझाए तो क्या वह अंङ्गुलि को नहीं जलाएगा ?

नाऽलं स्वार्थेऽपि शुद्धाः स्युः, परस्परमसङ्गताः।
किं मिथो मिलनाभावे, दन्ताश्चर्वणचञ्चवः? ।।333।।

सहृदयों का परस्पर असहयोग होता है तो स्वार्थ होने पर भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। दाँतों के परस्पर न मिलने पर क्या खाने का आनन्द आता है ? अर्थात् नहीं।

दुष्टधीर्वर्धितो यत्र, भवेत्तत्स्थाननाशकृत्।
अग्निः प्रोद्दीपितो यत्र, तद्दाहे नास्त्यनिर्णयः।। 334।।

जहाँ दुष्ट बुद्धि बढ़ जाती है वह उस स्थान के लिए विनाशकारी होती है। जहाँ अग्नि जला दी गई हो वह बढ़ जाने पर उस स्थान को निश्चित ही जलाने के लिए ही होंगी।

इमाः स्त्रिय इतीमासु, मा स्म कुर्ववही(हे)लनम्।
किमंगुलीर्विनाऽगुंष्ठः, कृत्यं कर्तुं किमप्यलम् ? ।।335।।

स्त्री होने पर उनकी अवेहलना नहीं करना चाहिये। अंङ्गुलियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बिना क्या अंगुठा कार्य करने मे समर्थ है ? अर्थात् नहीं।

गतामवस्थां मा ध्याय, राज्ञि व्रतिनि योषिति।
कौशेया भोजपूर्वा यत्, कृमिकर्दमलोमजाः।। 336।।

रेशम का उपयोग करने से पूर्व यह विचार नहीं किया जाता है कि, वह कीड़ों से, कर्दम से अथवा रोम से उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार रानी बन जाने पर अथवा स्त्री के व्रत धारण करने पर बीति हुई अवस्था का चिन्तन नहीं करना चाहिए।

अपि पूर्वसुखं गच्छ,–त्युत्सवेऽप्यमहात्मनाम्।
दत्तहर्षासु वर्षासु, नाऽर्काणां किमपत्रिता।। 337।।

उत्सव के बीत जाने पर अज्ञानी व्यक्तियों के सुख भी चले जाते हैं। वर्षा के बीत जाने पर अर्क के वृक्ष क्या पत्तों से विहीन नही हो जाते ?

पापवान् संगतः पापैः, स्यान्महानर्थकारणम्।
खरैरुत्थापितः पांशु,–र्विशेषात् किं न पुण्यहृत्?।।338।।

पापी व्यक्ति पाप के संग से महान् अनर्थ का कारण होता है। गधे के द्वारा उड़ायी हुई धूल क्या विशेष पुण्य को नहीं हरती है ?

अव्यक्ता अपि हृष्यन्ति, संरावरसशीलिताः।
जहाति जननीगीतै,–र्न किं रुदितमर्भकः ?।।339।।

रस से युक्त वाद्य की ध्वनि अव्यक्त होते हुए भी प्रसन्नता देती है। माता के गीतगान से क्या बच्चा रोना नहीं छोड़ देता है ?

विधत्ते कृत्यमुग्राणां, तुच्छोऽपि तत्परिच्छदः।
न हि फेनस्य सन्तुष्टिः, स्यात्तदीयैस्तुषैरपि !।।340।।

उत्तेजित व्यक्तियों के कार्य तुच्छ व्यक्तियों द्वारा भी ढँक जाते है। झाग की सन्तुष्टि उसके तुष के द्वारा नहीं होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलिः कलिकृतां पार्श्वे, स्थितानामप्यभूतये।
वंशसंघर्षभूरग्निः, किं दहेन्नाऽखिलं वनम् ?।। 341।।

कलह उत्पन्न होने पर आस–पास मे स्थित वातावरण को भी कलहमय बना देता है। बाँस के संघर्ष से उत्पन्न अग्नि क्या पूरे वन को नहीं जला देती है ?

सुखचिह्नमपि स्थाने, प्राप्तमाल्हादयेज्जगत्।
स्थितं किं कामकृन्नासीत्, स्मितं स्मितमुखीमुखे?।।342।।

सुख के चिह्न द्वारा भी जगत् प्रसन्नता को प्राप्त करता है। प्रसन्न मुख होने पर क्या काम–क्रीड़ा नहीं होती है ?

गुरौ पूर्णेऽपि निर्बुद्धि,–स्तद्विद्यां लातुमक्षमः।
अप्यब्धौ लेहनप्रह्वा, रसना रसनालिहाम्।। 343।।

गुरु के पूर्ण विद्वान् होने पर भी निर्बुद्धि शिष्य उस विद्या को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता है। समुद्र के होने पर भी श्वान (कुत्ता) अपनी झुकी हुई जिह्वा के द्वारा आस्वादन नहीं ले सकता है।

खलैरेव महात्मानः, क्रियन्ते रसनिर्भराः।
आतपैरवे पच्यन्ते, यत्फलान्याम्रभूरूहाम्।। 344।।

महान् व्यक्तियों की महत्ता दुर्जनों द्वारा ही बढ़ती है। आमवृक्ष के फल गर्मी के द्वारा ही पकते हैं।

महोत्सवाय मन्यन्ते, पापिनः पापसंस्तवम्।
किं निर्भरं न नृत्यन्ति, बर्हिणो विषवीक्षणात्?।।345।।

कभी–कभी किसी विशेष कार्य के लिए पापी व्यक्तियों के पाप की प्रशंसा भी मान्य की जाती है। क्या मयूर सर्प को देखने पर नृत्य नहीं करते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समानत्वेऽपि भोगानां, विशेषः स्वस्वचिह्नयोः।
भवेन्मैथुनतस्तृप्ति,—र्नराणां न च योषिताम्।। 346।।

भोगों के समान होने पर भी अपनी—अपनी योग्यता के अनुसार उसके परिणाम होते हैं। मैथुन क्रिया से पुरुषों को शीघ्र तृप्ति होती है, स्त्रियों को नहीं।

गुणदोषसमत्वेऽपि, गुणख्यातिर्महात्मनाम्।
रत्नकर्करमातृत्वे, रत्नगर्भा वसुन्धरा।। 347।।

गुण और दोष समान होने पर भी महान् व्यक्ति के गुण ख्याति प्राप्त करते हैं। रत्न और कंकर दोनों के होने पर भी पृथ्वी रत्नों के कारण रत्नगर्भा कहलाती हैं।

चिह्नवत्त्वे समानेऽपि, लज्जाया बीजमाकृतिः।
स्त्रीणां स्त्रीणां न लज्जा, पुंसां पुसां च भूयसी।।348।।

लक्षणों के समान होने पर भी लज्जा का मुख्य कारण आकृति होती है। मनुष्यत्व रूपी लक्षण के समान होने से स्त्रियों को स्त्रियों से एवं पुरुषों को पुरुषों से अधिक लज्जा नहीं होती है। क्योंकि उनकी आकृति भी समान है।

धने गतेऽपि दौर्गत्यं, न कदाऽपि कलावताम्।
प्रमीतेऽपि भुजंगे किं, वैधव्यं पणसुभ्रुवाम् ?।। 349।।

धन के जाने पर भी कलावान् को कभी दुख नही होता है। प्रेमी के मर जाने पर क्या वैश्या वैधव्य को प्राप्त करती है ? अर्थात् नहीं।

ऐश्वर्यमूर्जदोजोभि,—र्घनैः परिजनैर्न च।
एकोऽप्येणेशतां सिंहो, भुङ्क्ते नैणो मृगौघवान्।।350।।

महान् व्यक्ति अपने तेज एवं पुरुषार्थ से ऐश्वर्य प्राप्त करते है, धन एवं सेवकों के कारण नहीं। सिंह अकेला ही मृगाधिपति के पद को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त करता है, केवल अपने ओज एवं शक्ति के बल पर। मृग को अनेक मृगों के मध्य रहकर भी मृगाधिपति की पदवी नहीं मिलती है।

दारेष्वेवादरः पुंसां, यत्र तत्राऽपि दृश्यते।
तुल्येऽप्यर्थे वधूधाम्नि, विवोढुं यान्ति यद्वराः।। 351।।

पति–पत्नी का संबंध समान होने पर भी पुरुषों द्वारा पत्नियों का हर जगह आदर होता है। समान कर्तव्य होने पर भी स्त्री घर को वहन करने में श्रेष्ठ होती है।

दोष्मान्नारिवधोद्युक्तः, परिवारमपेक्षते।
घ्नतः करिघटामासीत्, कः सिंहस्य परिच्छदः?।।352।।

मात्र अपने भुजबल के सहारे शत्रुवध हेतु उद्यत् वीर पुरुष परिवार जनों की अपेक्षा नही रखता। क्या हाथियों के समूह पर टूट पड़ने वाले सिंह के साथ उसका परिवार रहता है ? अर्थात् नहीं।

प्रभुता स्याददत्तैव, दोष्मतामतिशायिनी।
आधिपत्यं मृगैर्दत्तं, किमु केसरिणामभूत् ?।। 353।।

दोषी व्यक्तियों की अत्यधिक प्रभुता प्रायः अदत्त ही होती है। हरिणों द्वारा दिया हुआ आधिपत्य क्या सिंहों का हुआ ? अर्थात् नहीं।

कोमलानामनर्थाय, व्यापारः कठिनात्मनाम्।
न स्याद्भ्रमिर्घरट्टानां, कणानां दलनाय किम्?।।354।।

कठोर लोगों का व्यापार कोमल लोगों के अनर्थ के लिए होता है। चक्की क्या कोमल दानों को दलने के लिए नहीं घूमती है ?

येषां संपत्तयः प्राय,–स्तेषामेव विपत्तयः।
हयेऽधिरोहः पुंसां स्यात्, पुंसां चान्घ्रिषु शृखंला।।355।।

जो जिसकी संपत्ति होती है वही उसकी विपत्ति भी होती है। घोड़े पर सवार व्यक्तियों के पैरों मे साँकल भी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यात्तस्मिन्नेव संबन्धे, पृथग् नामाकृतेर्वशात्।
यत्पितुः सोदरः काकः, स्वसा तस्य फईति च।।356।।

संबंध समान होने पर भी आकृति के आधार पर अलग–अलग नाम दिये जाते है। जैसे पिता के भाई को काका और उनकी बहन को भुआ कहते हैं।

प्रायः सापदमेवानु,–सरन्ति नरमापदः।
यत्कलंकिनमेवेन्दुं, क्षीणत्वमनुधावति।।357।।

आपत्तिग्रस्त व्यक्ति के पीछे आपत्ति पड़ी ही रहती है। कलंक से युक्त चन्द्रमाँ के पीछे क्षीणत्व दौड़ता है।

अप्युत्तुंगा गते सारे, भवन्ति नतिकारिणः।
न दृष्टा यौवने याते, नम्रता किमुरोजयोः ?।। 358।।

समृद्धि के चले जाने पर व्यक्ति झुक जाता है। यौवन के चले जाने पर क्या स्तनो मे नम्रता नहीं दिखाई देती?

महतामपि केषांचित्, फलं नाडम्बरोचितम्।
तुच्छं फलं न किं दृष्टं, सद्विस्तारोद्भटे वटे?।।359।।

किसी बड़े कार्यों के फल का आडम्बर उचित नहीं होता है। श्रेष्ठ विस्तार वाले वटवृक्ष पर क्या छोटे–छोटे फल नहीं देखे जाते हैं?

स्वल्पसत्त्वैरपि स्त्रीणां, पराभूतिर्न सह्यते।
पक्षिणोऽपि प्रकुर्वन्ति, स्वकलत्रकृते कलिम्।। 360।।

अशक्त व्यक्ति भी स्त्रियों का किसी के द्वारा किया गया अपमान सहन नहीं करता। पक्षी भी अपनी पत्नी के लिए दूसरे पक्षियों से लड़ लेते हैं।

द्विजिव्हा दम्भमुज्झन्ति, निजस्थाने समागताः।
बिले बिलेशयाः प्राप्ताः, किं न मुंचन्ति जिह्मताम्? ।361।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुटिल व्यक्ति स्वयं के स्थान पर कुटिलता का त्याग कर देता है। सर्प बिल में प्रवेश करते समय अपनी कुटिल चाल को क्या नहीं छोड़ देते हैं ?

लघूनामपि केषांचि, दात्मदि श्रेष्ठा भवति।
कृशाऽपि किं न कूष्माण्डी, दत्ते गुरुतरं फलम्?।।362।।

कभी–कभी छोटे व्यक्तियों की भी आत्मशक्ति अधिक होती है। तुमड़े का वृक्ष कृशकाय होते हुए भी क्या बड़े फल नहीं देता?

संशये सम्पदां मानोन्नता एवासिताननाः।
पयोऽस्तु माऽस्तु वा तौङ्ग्यं, तारुण्ये स्यादुरोजयोः।।363।।

संपत्ति हो या न हो फिर भी अहंकारी व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड करता है। स्तन में दूध हो अथवा न हो तारुण्य में वे सदैव ही उन्नत रहते हैं।

संग श्यामात्मनां मुञ्च, पदमुच्चैर्यदीहसे।
तैलं त्यक्तखलं श्रीमन्, मूर्धानम्अधिरोहति।। 364।।

यदि उच्च पद की चाह हो तो दुष्ट व्यक्तियों का संग छोड़ दो। खली से रहित तैल धनी व्यक्तियों के सिर पर लगाया जाता है।

भग्नता ज्ञायते सज्जी–भूतेऽपि शिथिलात्मनि।
लाक्षासज्जोऽपि नाज्ञायि, भग्नोऽयमिति किं घटः?।।365।।

शिथिल व्यक्ति सज्जीभूत होने पर भी वह सजावट उसके पतन का ही प्रतीक होती है। लाख से सजा हुआ घड़ा क्या "यह फूटा है" ऐसा मालूम नहीं पड़ता ?

धन्यात्मा भग्नभावोऽपि, भवति प्रीतिमान् पुनः।
भूतोऽपि दलशः स्वर्ण,–कलशः सन्धिमेति यत्।।366।।

महान् व्यक्ति भावों के टूट जाने पर भी पुनः प्रीतिवाले ा जाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। टूटा हुआ स्वर्णकलश सन्धि के द्वारा पुनः जुड़ जाता है।

गते प्रसिद्धिमूलेऽपि, गुणे सा स्यात् प्रभाभृताम्।
सहस्रपात्त्विषां प्रेयान्, पादहीनोऽपि संमतः।। 367।।

प्रकाशवान् व्यक्ति के मूलगुण चले जाने पर भी वह प्रासिद्धि प्राप्त करता है। सूर्य किरणों से हीन हो जाने पर भी सम्मानित होता है

खेदिता अपि संशुद्धाः, स्युः परस्परसंगताः।
मर्दिता अपि किं नोर्ण,—तन्तवो मिलिता मिथः?।।368।।

दुखी होने पर भी पवित्र आत्मा व्यक्ति परस्पर मिलकर रहते हैं। ऊन को मसलने पर भी क्या तन्तु परस्पर मिले हुए नहीं होते हैं ?

दत्तं ज्योतिष्मते वित्तं, सद्यः संपद्यते श्रिये।
द्राग्दीपो निहिते स्नेहे, वस्तुव्रातं प्रकाशयेत्।।369।।

पुण्यवान् व्यक्ति को कल्याण के लिए दिया हुआ धन शीघ्र ही समृद्ध होता है। दीपक में घी रख देने पर वस्तु समूह शीघ्र ही प्रकाशित हो जाता हैं। (दिखलायी पड़ जाता है)

कुपात्रे निहिते शास्त्रे, नाधाराधेययोः शुभम्।
कुम्भेऽप्यामे जले न्यस्ते, नाशः स्यादुभयोरपि।।370।।

कुपात्र को शास्त्र का ज्ञान होने पर वह आश्रय—आश्रयी दोनों के लिए शुभ नहीं होता है। कच्चे घड़े में पानी रखने पर घड़े और पानी दोनों का ही नाश होता हैं।

नाप्नोति द्युतिमान् मानं, विना संग लघीयसाम्।
विना गुञ्जातुलां मूल्यं कवचित् कांचनमर्हति?।।371।।

छोटे व्यक्तियों के सहयोग बिना प्रकाशमान व्यक्ति भी मान को प्राप्त नहीं करते है। गुंजतुला (एक माप) के बिना स्वर्ण मूल्य के योग्य नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंशोऽपि दुष्टदृष्टीना,—मन्येषां स्याद्विनाश.त्।
व्याघ्राणां वाललेशोऽपि, जग्धो जीवितहानये।।372।।

दुष्ट—दृष्टि की एक किरण भी अन्यों का नाश करने वाली हो सकती है। बाघों के बालों का लेश मात्र भी खाये जाने पर उनके प्राणों की हानि हो सकती है।

अतिस्वच्छात्मनामन्त,—र्वृत्तिर्विज्ञायते सुखम्।
वस्तुतः काचपात्रान्त,—र्गतस्यावगमो न किम्?।।373।।

अति पवित्र आत्मा के अन्दर की वृत्ति सरलता से जानी जा सकती है। काँच पात्र के अन्दर रखी हुई वस्तु का ज्ञान क्या नही होता है ? हो जाता है।

अन्तर्निहितसाराणां, गोपने प्रीतिरुत्तमा।
यदीक्ष्यते महान् यत्नो, हृत्पिधाने मृगीदृशाम्।।374।।

अन्दर गर्भित सार को गुप्त रखने पर उसके प्रति और अधिक प्रीति हो जाती है। सुंदर स्त्री को अपने हृदय को ढँकने में बहुत प्रयत्न करते हुए देखा जाता है।

प्राप्तः परप्रियापार्श्वं, कलावानपि दुर्गतः।
क्षीणत्वं याति किं नेन्दुः, पूर्वदिग्भागमागतः?।।375।।

कलावान् व्यक्ति भी परप्रिय के पास जाने पर दुर्गति को प्राप्त करता है। पूर्व दिशा की ओर आया हुआ चन्द्रमाँ क्या क्षीणत्व को प्राप्त नहीं होता ?

कर्कशा अपि सत्पात्र,—संगताः पारगामिनः।
नाम्भोधिं यानपात्रस्था, दृषदोऽपि तरन्ति किम्?।।376।।

सज्जन पुरुषों के संग करने से दुष्ट व्यक्ति भी पारगामी (तर जाते हैं) हो जाते हैं। क्या जलयान में रखा हुआ पत्थर समुद्र को पार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करता है ? अर्थात् कर लेता है (जलयान के संसर्ग वश)

दुरात्मानश्चिरायुष्काः, प्रायशः स्युर्न चेतरे।
चिरजीवित्वसंयुक्ता, वायसा न सितच्छदाः।। 377।।

प्रायः सज्जनों की अपेक्षा कलुषित आत्माओं की आयुष्य लम्बी होती है। जैसे कौए का जीवन लम्बा होता है, सफेद पंख वाले सारस, हंस आदि का नहीं।

शुचयो मण्डनं जन्म,—भूमिगा वा परत्रगाः।
दन्ता दन्तिमुखे भूषा, करे वा हरिणीदृशाम्।। 378।।

पवित्र व्यक्ति जन्मभूमि पर विचरते है अथवा अन्य स्थान पर वे हमेशा शोभित ही होते है। दाँत हाथी के मुख में हो अथवा सुन्दर स्त्री के हाथ में (आभूषण के रुप में) शोभित ही होते हैं।

परिवारे प्रभूतेऽपि, दुःखं दुर्दैवदण्डिनाम्।
छिद्यन्ते नहि बुब्बूलाः, कोटिशः कण्टकेषु किम्? ।।379।।

बहुत परिवार होने पर भी दुर्भाग्य का दुख वृद्ध व्यक्तियों को ही होता है। करोड़ों काँटे होने पर भी क्या बबूल का वृक्ष काटा नहीं जाता है ?

महापरिकराकीर्णो, लघीयानपि सत्फलः।
बृहद्दलायां रम्भायां, लघ्व्यां किं नामृतं फलम्? ।।380।।

चारों ओर व्याप्त होने पर भी छोटे फल अच्छे होते हैं। बहुत संख्या में केले के फल छोटे होने पर भी क्या अमृत फल नहीं होते है?

त्वरयैव व्ययं याति, ज्योतिष्मानप्यसारभूः।
तृणाज्जातस्य यद्वह्नेः, कियती स्यादवस्थितिः? ।।381।।

इस असार संसार में प्रकाशवान् व्यक्ति भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। अग्नि में गये हुए तिनकों की स्थिति कितनी होती है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलं दत्तेऽतितुंगोऽपि, तुच्छं तुच्छपरिच्छदः।
यद् बुब्बूले फलं फल्गु, गुरावप्यगुरुच्छदे।। 382।।

अत्यन्त उन्नत व्यक्ति भी तुच्छ लोगों से घिरा होने पर अनुपयोगी फल ही प्रदान करता है। जैसे बबुल का वृक्ष बड़ा होने पर भी तुच्छ कांटों से घिरे होने के कारण निरर्थक फल प्रदान करता है।

लभते हृत्सु सौहार्दं, स्थैर्यं नैवास्थिरात्मनाम्।
पांसूनामुपरि न्यस्तैः, स्थीयते कियदक्षरैः ?।। 383।।

अस्थिर लोगों के हृदय में मित्रता प्राप्त हो जाने पर भी स्थिर नहीं रहती है। धूल के ऊपर लिखे गये अक्षरों की स्थिति कितनी होती है ?

सान्द्रापि न स्थैर्यवती, प्रीतिः पारिप्लवात्मनाम्।
अदभ्राऽपि किमभ्राणां, छाया न क्षणनश्वरी ?।।384।।

इधर–उधर घूमनेवाले व्यक्तियों की प्रीति सुकर होते हुए भी स्थायी नहीं होती है। क्या इधर–उधर घूमने वाले बादलों की छाया क्षणनश्वरी नहीं होती है ?

नीचानामप्यवष्टम्भः, सापदां महतां हितः।
अपि भग्नाः कार्यसृजो, जतुना संहिता घटाः।।385।।

कष्टग्रसित (ग्रासीन) व्यक्तियों का सहारा भी नीच व्यक्तियों का हित करता है। लाख से जोड़ा गया टूटा घड़ा भी कार्य को सफल करता है।

उद्धता अलमुद्धर्तुं,–मौद्धत्यं दुरितात्मनाम्।
क्षाराणामेव सामर्थ्यं, मलनाशाय वाससाम्।। 386।।

अंहकारी व्यक्ति के अहंकार का नाश करने का सामर्थ्य अंकारी व्यक्ति मे ही होता है। कपड़े पर लगे मेल के नाश का सामर्थ्य क्षार में ही होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगताः कलये नूनं, कठिनाः कठिनात्मभिः।
अग्निरुत्पद्यते सद्यः संयोगे ग्रावलोहयोः।। 387।।

कठोर आत्मा से कठोर आत्मा का मिलन निश्चित ही कलहकारी होता है। लोहे और पत्थर का संग होने पर शीघ्र ही अग्नि उत्पन्न होती है।

यत्र तिष्ठेत् कठोरात्मा, तत्राऽनर्थाय भूयसे।
मध्येघण्टं स्थिता लाला, घण्टां हन्ति समन्ततः।।388।।

जहाँ कठोर आत्मा स्थित होती है वहाँ अनर्थ होता है। घण्टे के मध्य में स्थित लोहे या पीतल का टुकड़ा चारों ओर से घण्टे को ही पीटता है।

गुणहारिणि मन्देऽपि, नश्यते गुरुणा स्वधीः।
बिम्बन्यासः सुखाधेयः, पीवरेऽपि हि चीवरे।। 389।।

गुणों के हरण करने वाले मन्दबुद्धि शिष्य में गुरु द्वारा अपनी बुद्धि नष्ट की जाती है। निश्चय ही शुद्ध वस्त्र में बिम्ब का आधान सुखपूर्वक (सरलतापूर्वक या आसानी से) किया जा सकता है।

मध्यस्थः प्रतिभूः क्लृप्तः, स्याद्धिताय द्वयोरपि।
देहल्यां निहितो दीपो, बहिर्मध्ये च तेजसे।। 390।।

मध्य में स्थित जमानत देने वाला व्यक्ति दोनों पक्षों के हित के लिए होता है। देहली पर रखा दीपक अन्दर एवं बाहर दोनों ही स्थानों पर प्रकाश करता है।

गुणस्तनोति स्वल्पोऽपि, मानं श्यामात्मनामपि।
मधुरेण स्वरेणाऽपि, काम्यन्ते किं न कोकिलाः?।।391।।

हमारे थोड़े से गुण भी हमारी कीर्ति को फैलाते हैं। मात्र मधुर स्वर के कारण कोयल भी क्या प्रिय नहीं होती हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुंगेष्वपि विना दोषै,—र्न गुणाः स्थैर्यधारिणः।
वालैरपि विना मौलौ, पुष्पाणां किमवस्थितिः?।।392।।

उच्च व्यक्ति होने पर भी दोषों के बिना गुण दृढ़ता से धारण नहीं किये जा सकते। मस्तक पर बालों के बिना फूलों की स्थिति (वैणी के रूप में रहना) कितनी होती है ?

प्रस्तावोचितवाक्येन, कटुवागपि मान्यते।
प्रस्थितैर्वामतः कूजन्, यत् काकः कीर्त्यतेऽनघः।।393।।

उचित अवसर पर कटुवचन बोलने वाला व्यक्ति भी मान्य होता है। प्रस्थान के समय बाँयी तरफ कौए का बोलना शुभ माना जाता है।

भवेत्तेजस्विनां प्रायो, गुणस्तेजस्विनिर्मितः।
दीपे चक्षुष्मतामेव, वस्तुजातं प्रकाश्यते(ऽशते)।।394।।

प्रायः तेजस्वी व्यक्तियों के गुण तेजस्वी के द्वारा ही निर्मित होते है। सूर्य के उदय होने पर आँखों वाले व्यक्ति को ही वस्तु दिखाई देती हैं।

अनर्थं तनुते तुंगो, हसन् मनसि निष्ठुरः।
तेजः स्तोमं वहन् वक्त्रे, न कुन्तः किमु मृत्यवे?।।395।।

उच्च व्यक्ति का अनर्थ होने पर निष्ठुर व्यक्ति मन में प्रसन्न होता है। तीव्र भाला मुख में तीक्ष्णता रखता हुआ क्या मृत्यु के लिए नहीं होता है ?

नाप्रस्तावे वदन् वाक्यं, मान्यते मञ्जुगीरपि।
गर्जन्नम्भोधरश्चारु, रोहिण्यां श्लाघ्यते न यत्।।396।।

अवसर के बिना बोली गई सुंदर वाणी भी मान्य नहीं होती है। रोहिणि नक्षत्र में बादलों की सुंदर गर्जना भी प्रशंसनीय नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भर्तुर्वैरिणि वैरित्व,—मुचितं रुचिशालिनाम्।
रवेर्घात्यं तमो हन्ति, दीपस्तल्लब्धदीधितिः।। 397।।

रुचि अथवा श्रद्धवान् व्यक्तियों का अपने स्वामी के शत्रु के प्रति वैरभाव रखना समीचीन माना गया है। सूर्य से प्रकाशप्राप्त करने वाले दीपक का रविशत्रु (अन्धकार) का नाश करना उचित है। दीपक अपने स्वामी सूर्य के वैरि अन्धकार को हटाने या मारने को सन्नद्द रहता है।

जडसंगोऽपि समये, क्लृप्तः श्रीहेतुरायतौ।
स्थाने निर्मित एव स्या,—दन्यशृंगारसंगमः।। 398।।

उचित समय पर किया हुआ जड़ का संग भी भविष्य में लक्ष्मी का हेतु होता है। उचित स्थान में अन्य शृंगार सामग्री का मिलन शोभा कारक होता है।

येषामभ्युन्नतिस्तेषा,—मेव प्रपतनं भवेत्।
समुन्नतिं च पातं च, स्तना एवाप्नुवन्ति यत्।। 399।।

जिनकी उन्नति होती है उनका पतन भी होता है। उन्नत स्तन ही पतन एवं उन्नति को प्राप्त होते हैं।

गुणवत्स्वेव पश्यामः, परोपद्रवरक्षिताम्।
शक्तिर्यत् खेटकेष्वेव, विविधायुधवारिणी।।400।।

गुणवान् व्यक्तियों में ही शत्रु द्वारा विहित उपद्रव से रक्षा करने की शक्ति विद्यमान रहती है। क्योंकि अनेक प्रकार के शत्रुओं के वारों का निवारण करने का सामर्थ्य खेटक (ढाल) में ही रहता है।

उत्सवेऽपि सदा प्रोच्चैः स्तब्धानां स्यादनुत्सवः।
यदाऽऽनन्दिनि संभोगे, मुष्टिघाता उरोजयोः।। 401।।

उच्च व्यक्तियों के आनन्द का अवसर होने पर दुर्जन व्यक्तियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को दुःख होता है। जब वे आनन्द का उपभोग करते हैं तब दुर्जन व्यक्ति छाती पीटते है।

चपलात्मन्यपि प्रीताः सन्तो दृग्रागमोहिताः।
हित्वाम्रादितरूंस्तस्थौ, जगन्नाथो हि पिप्पले।। 402।।

नयन रागिमा से सम्मोहित व्यक्ति चंचल प्रकृति के मनुष्यों में स्नेह रखने वाले बन जाते हैं। भगवान् जगन्नाथ ने आम आदि वृक्षों का परित्याग कर अपना निवास पीपल के वृक्षों में बनाया।

लघीयानपि समये, महतां मानमर्हति।
यद् गृह्यतेऽपि भूपालै,–र्लेखिनी लिखनक्षणे।। 403।।

कभी–कभी समय आने पर छोटी वस्तु भी बड़े लोगों द्वारा सम्माननीय हो जाती है। जैसे राजा द्वारा लिखते समय लेखिनी (कलम) का गृहण किया जाता है।

देशे गुणवदादेशे, गुणी गच्छति गौरवम्।
जनेषु वस्त्रयुक्तेषु, यत्पटो मूल्यमर्हति।। 404।।

गुण के समान गुणी व्यक्ति भी उचित स्थान पर ही गौरव को प्राप्त करते है। लोगों के वस्त्र–युक्त होने पर ही वस्त्र मूल्य के योग्य हो जाते हैं।

कर्कशानां व्यथा बह्वी, मृदूनां च सुखोदयः।
दन्तानां चर्वणाऽशर्म, जिह्वायाश्च रसागमः।। 405।।

प्रायः कर्कश व्यक्तियों को व्यथा होती हैं और नम्र व्यक्तियों को सुख प्राप्त होता हैं। खाने पर दाँतों को कष्ट होता है और जिव्हा को रस मिलता है।

आचारोज्झितमुज्झन्ति, रुचिमन्तमपि स्वकाः।
ग्रहभर्ता परासक्तो, मुमुचे निचयै रुचाम्।। 406।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचरण विहीन रुचिकर व्यक्ति का परित्याग उसके स्वजन ही कर देते हैं। अन्य ग्रहों (नक्षत्रों) में आसक्त ग्रहस्वामी (सूर्य) अपनी किरण समूहों द्वारा छोड़ दिया जाता है। इस सुभाषित में आचरण की महिमा का सुंदर एवं पालनीय वर्णन ग्रंथकार द्वारा किया गया हैं।

स्वगुणं तनुते विष्वक्, कलावानेव वीक्षितः।
शुक्लः पक्षो ह्यदृष्टेन, शुक्लप्रतिपदिन्दुना।। 407।।

कलावान् व्यक्ति ही अपने गुणों को चारों ओर फैलाते हैं। शुक्ल पक्ष की एकम से चन्द्रमाँ अपनी कलाएँ फैलाता है।

कलाविलासिनो नैव, भवन्त्यसरलाः खलु।
भजते वक्रभावं किं, क्वचित् कुमुदिनीपतिः?।।408।।

कलावान् व्यक्ति ही सरल होते है अन्य दुर्जन व्यक्ति नहीं। क्या कभी–भी चन्द्रमाँ वक्रता का सेवन करता है ?

गतिर्भवति पापस्य, विपरीता जगज्जनात्।
किं स्वर्भानुर्भ्रमन् दृष्टो, न संहारेण सर्वदा?।।409।।

पापी व्यक्ति की चाल जगत् के लोगों से विपरीत ही होती हैं। क्या राहु हमेशा संहार के लिए भ्रमण करता हुआ नहीं दिखाई देता है?

स्नेहोऽप्यशर्मणां हेतुः, कृतः सन्तापकारिणि।
अपि सर्पिः प्रदत्तं स्या,–दनर्थाय ज्वरातुरे।। 410।।

सन्तापी व्यक्तियों को स्नेह देने पर भी वह सन्ताप का ही कारण होता हैं। ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों को दिया गया हुआ घी क्या अनर्थ के लिए नहीं होता है ?

सुखलक्ष्मीजुषामेव, विनये वपुरुत्सुकम्।
शाखा फलवतामेव, शीलानां नतिशालिनी।। 411।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख और लक्ष्मी का उपभोग करने वाले व्यक्तियों का शरीर विनय के लिए उत्सुक रहता है। फलों से लदी हुई शाखाएँ ही झुकती हैं।

गुणेषु सत्स्वपि प्रीति,—र्दोषेष्वेवासतां भवेत्।
तटाकेऽम्भोजभव्येऽपि, भेकानां कर्दमः प्रियः।। 412।।

सज्जन व्यक्तियों की प्रीति गुणों में होती है और दुर्जन व्यक्तियों की दोषों मे। कमल भव्यतालाब में होते है और मेंढ़को को कीचड़ प्रिय होता हैं।

आचारेऽपि भृशाधिक्य,—मपि दोषाय जायते।
अमुष्यार्थः सखे! वृद्धौ, गुणेऽपि किमु नाऽजनि?।।413।।

अत्यधिक प्रथाऐं भी दोष को उत्पन्न करने वाली होती हैं। हे मित्र! स्वरों के होने पर क्या वृद्धि और गुण उत्पन्न नहीं होते हैं ?

संकुचेत्पापमुत्कर्षं, प्राप्ते तेजस्विते जसि।
किमल्पीयसी छाया, भानौ मध्यमुपागते ?।। 414।।

दिव्य व्यक्ति का प्रकाश प्राप्त कर उत्कर्ष—पाप भी कम हो जाता है। सूर्य के मध्य में आ जाने पर क्या परछाई अपेक्षाकृत छोटी नहीं हो जाती है ?

अन्तः श्यामात्मभिर्वित्तं, दीयतेऽडि.घ्रभिराहतैः।
कण्ठन्यस्तपदा एव, कूपा यच्छन्ति यज्जलम्।। 415।।

चरणों से प्रताड़ित मलिन आत्मा द्वारा धन दे दिया जाता है। क्योंकि कूएँ अपने गले पर पाँव रखे जाने पर (कूएँ के ऊपरी भाग पर पाँव रखकर पानी खींचा जाता है) कूआ स्वयं जल प्रदान कर देता है।

गुणित्वे सदृशे कीर्ति,—र्महतां न लघीयसाम्।
रत्नवत्त्वेऽपि यद्रत्ना,—करो वार्धिर्न रोहणः।। 416।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणों के समान होने पर भी बड़े लोगो की ख्याति होती है छोटे व्यक्तियों की नहीं। रोहण पर्वत एवं समुद्र दोनों मे रत्न होने पर भी समुद्र ही रत्नाकर नाम से प्रसिद्ध है।

अल्पस्याप्यागमे वृद्धिः, सद्भूयोऽप्यपचीयते।
निदर्शनमिह स्पष्टं, कूपोदकसरोदके।। 417।।

आय अल्प होने पर अधिक धन भी एक दिन क्षीण हो जाता है। यह बात कुएँ और तालाब के जल को देखकर स्पष्ट हो जाती है।

परेषां विपदं प्रेक्ष्य, गर्वः कः संपदां सखे !।
पूर्वारघट्टघट्टयासी,–द्रिक्तान्यासां किमुत्सवः?।।418।।

हे सखे! अन्य व्यक्तियों की विपत्तियों को देखकर अपनी सम्पत्ति का गर्व क्यों किया जाय ? रहट के खाली हुए घटिकाओं को देखकर क्या भरे हुए रहट के घटों को आनन्द होता है ?

न भवेत् स्वपरव्यक्तिः, कदाचित् क्रूरचेतसाम्।
नाग्निः किं वंशजातोऽपि, सवंशारण्यदाहकृत्?।।419।।

क्रूर मन वाले व्यक्ति को स्वपर का भेद नहीं होता है। अग्नि बाँस से उत्पन्न होने पर भी क्या अपने ही वंश अर्थात् बाँसों के जंगल को नहीं जला देती है ?

सयत्नाः सौवमाहात्म्य,–रक्षणेऽपि महाशयाः।
यत्कृता स्वाम्बुरक्षायै, नालिकेरैस्त्रिधा वृतिः।। 420।।

महान् व्यक्ति भी प्रयत्न द्वारा अपने माहात्म्य का रक्षण करते हैं। अपने भीतर के पानी की रक्षा के लिए नारियल द्वारा तीन तरह से आवृत्ति (घेरा, रक्षा) की जाती है।

वस्तु दत्तं भवेद्रम्य,–मपि तुच्छं महात्मने।
क्षारमप्यम्बु मेघाय, वितीर्णं वरमब्धिना।। 421।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् व्यक्ति के लिए दी हुई तुच्छ वस्तु भी रम्य हो जाती है। समुद्र द्वारा दिया गया खारा जल भी मेघों के लिए श्रेष्ठ बन जाता है।

या प्रवृत्तिर्भवेदाद्या, प्रसिद्धिं समुपैति सा।
कृष्णः कृष्णेतरः पक्षो, मुखे तमसि तेजसि।। 422।।

प्रारंभ मे जिसकी जैसी समृद्धि होती हैं उसकी चारों ओर वैसी ही प्रसिद्धि होती है। कृष्ण पक्ष मे अंधकार फैलता है और शुक्ल पक्ष मे प्रकाश फैलता है।

महोऽन्यत्र स्थितं सिद्ध्यै, मृतस्याऽपि महस्विनः।
नास्तस्याऽपिरवेर्भासः, किमालोकायदीपकाः?।।423।।

प्रकाशवान् व्यक्तियों के विनष्ट हो जाने पर अन्य व्यक्ति अपना प्रकाश फैलाने में सफल होते है। सूर्य के अस्त हो जाने पर क्या दीपक का प्रकाश देखने के लिए नहीं होती है ?

जीवैः प्रायेण जीवद्भि,—र्विपत्तिरभिभूयते।
क्षीणभावो निराकारि, न किं कुमुदबन्धुना ?।। 424।।

प्रायः शक्तिशाली एवं जीवित व्यक्तियों द्वारा ही विपत्ति का शमन किया जाता है। क्या चन्द्रमाँ द्वारा अपना क्षीण भाव हटाया नही जाता है ? अर्थात् वह स्वयं काल क्षय को हटा देता है।

गुणाय समये क्रूर,—संगोऽपि विशदात्मनाम्।
दोषे स्याद् घोषपात्राणां, निहितः किं हुताशनः?।।425।।

विशदआत्मा को गुण प्राप्ति के अवसर पर क्रूर व्यक्ति का भी संग करना पड़ता है। काँसे मे दोष होने पर उसके निवारण के लिए क्या उसे अग्नि मे नहीं डाला जाता है ?

रागवन्तो बहिस्तुच्छा, भवन्त्यन्तश्च नीरसाः।
अयमर्थः स्फुटं गुंजा,—फलेषु ददृशे न कैः ?।।426।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागवान् व्यक्ति बाहर से तुच्छ एवं अन्दर से नीरस होते हैं। इस वर्ग मे गुंजे का फल किन लोगों द्वारा नहीं देखा गया?

वाल्लभ्यं न च कृत्येन, नावाल्लभ्यमकृत्यतः।
बहुकार्येऽपि सा प्रीति,—र्न लोहे या च कांचने।।427।।

किसी वस्तु के लिये परिश्रम करने मात्र से उसके प्रति प्रीति उत्पन्न नहीं हो जाती है एवं परिश्रम न करने पर किसी के प्रति अप्रीति हो जाती है। जैसे लोहे की प्राप्ति हेतु बहुत अधिक श्रम किये जाने पर भी लोहे मे प्रीति नहीं होती एवं बिना श्रम किये भी स्वर्ण की उपलिब्ध होने पर उसके प्रति अप्रीति नहीं होती है।

स्वच्छात्माऽपि स्वकैस्त्यक्तो, लाघवं द्रुतमश्नुते।
न किं दध्नः पृथग्भूतं, नवनीतं तरत्यहो ?।। 428।।

निर्मल व्यक्ति होने पर भी यदि वह दरिद्रता को प्राप्त कर लेता है तो स्वजन उसका शीघ्र त्याग कर देते है। दही के लघुता प्राप्त करने पर अर्थात् मक्खन बन जाने पर क्या पृथक् नहीं कर दिया जाता?

यादृशैः संगतिः संपद्,—दीयते तादृगेव तैः।
दत्तः कज्जलदुग्धाभ्यां, संगात् स्वस्वकुलेऽम्भसः(?)।।429।।

जिस प्रकार की प्रवृत्तिवाले लोगों के साथ जिनका सम्बन्ध होता है उनको उसी प्रकार सम्पत्ति (ख्याति) दी जाती है। काजल तथा दूध के द्वारा अपने अपने सम्पर्क वश जल को सहवास—वश किया जाता है। काजल के साथ जल संयुक्त होकर कालिमा प्राप्त कर लेता है और दूध के साथ मिल जाने पर उसे धवलता प्राप्त हो जाती है।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च, स्वयमेवाऽमलात्मनाम्।
अब्धेरद्रिरागमनं, यानं च कृतमात्मना।। 430।।

पवित्र आत्मावाले व्यक्तियों को स्वयम् ही (अपने आप) कर्म में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति एवं कर्म से निवृत्ति मिल जाती है। समुद्र के पानी द्वारा अपने आप ही आना–जाना किया जाता है।

महः करोति किं तुच्छे, वस्तुनि स्थितिमागतम् ?।
तेजः स्तोमः किमाप्नोति, माहात्म्यं काचखण्डगम्? ।।431।।

तुच्छ स्थिति को प्राप्त होने वाले व्यक्ति को तेज क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ नही। तेज का समूह क्या प्रस्तर खण्ड को मिल सकता है ? बिलकुल नहीं। प्रस्तर पर कभी भी तेज प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता है।

स्यात् परादाप्तवित्तोऽपि, महस्वी परकृत्यकृत्।
न प्रदीपः प्रकाशायः, खेचराप्तप्रभोऽपि किम्? ।।432।।

दूसरों से धन प्राप्त व्यक्ति भी दूसरे के द्वारा किये गये कार्य की महस्विता प्राप्त कर सकता है। चन्द्रमाँ से कान्ति प्राप्त करने वाला दीपक क्या प्रकाश नहीं कर सकता है।

मिलिता अपि निःसारा, प्रजायन्ते पुनर्द्विधा।
जलैर्बद्धेषु यद्धूली,–मोदकेष्वेष विस्तरः ।। 433।।

अनेक सारहीन वस्तुओं का संयोग पुनः दो भागों में विभक्त हो जाता है। जो धूलि जल के संयोग से गोलाकार बन जाती है वह कालान्तर में विभक्त हो जाती है। परन्तु वह संयोग लड्डू में विस्तार को पा लेता है।

कुस्थाने संगतिर्नूनं, व्यसनव्यापृतात्मनाम्।
मधुपानां रजःस्वेव, वसतिर्ददृशे न कैः ?।। 434।।

विपत्ति मे फँसे हुए व्यक्तियो को निश्चय ही बुरे लोगों की संगति मिल जाती है। क्या भँवरों को रजः (पराग) के साथ वसना किनके द्वारा नहीं देखा गया है ? अर्थात् सभी जानते है कि भ्रमर पुष्प पराग में निमग्न रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचो मुंचति नीचत्वं, वसन्नान्तः सतामपि।
कलावन्मण्डपे तिष्ठन्, मृगो नौज्झत् कुरंगताम्।।435।।

सज्जनों के समीप रहे हुए नीच व्यक्ति भी अपनी नीचता को नहीं छोड़ते है। कलावतमण्डप में बैठे हुए मृग अपनी चंचलता को नहीं त्यागते हैं।

किं करोति सतां संगः, पातधर्माधिकारिणाम् ?।
पश्य मुक्ताश्रिताः कान्ता,—कुचाः श्वेतेतराननाः।।436।।

अधम व्यक्तियों को सज्जन पुरुषों की संगति का भी कोई भी लाभ नहीं होता है देखिये! मोतियों की माला का आश्रय लेने वाले कामिनी कुच अग्रभाग मे कालिमा को ही धारण करते है।

धत्ते चित्ते न संवासं, विवेको जड़वासिनाम्।
भजत्यम्भोजिनीं हंसः, पवित्रोऽपि रजस्वलाम्।।437।।

जड़तापूर्ण जीवधारी व्यक्तियों का विवेक उनके चित्त में निवास नहीं करता है। (वे विवेक हीन हो जाते है)। पवित्र होने पर भी हंस रजःस्वलाभ (पुष्पपरागपरिपूर्ण) कमलान्वित सरोवर का सेवन करता है।

शुभाशुभविचारोऽपि, न भवेत्षण्ढचेतसि।
जगत्प्रियमपीशानः, कलाकेलिमदीदहत्।। 438।।

चरित्रहीन व्यक्ति के मन मे अच्छे अथवा बुरे विचारों का विवेक (ज्ञान) नहीं होता है। भगवान् शंकर ने संसार प्रिय कामदेव को भी भस्मसात् कर डाला।

कुकुलं हन्ति सद्धद्धिं, नानीतां शुभकर्मभिः।
निषेवते दिवा नक्तं, गोपेन्द्रोऽपि रसाधिपम्।। 439।।

अच्छे कर्म द्वारा अर्जित ऐश्वर्य बुरे कुल को नष्ट नहीं करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोपेन्द्र (श्री.ष्ण) रातदिन रसाधिप (जल के निधान) समुद्र का सेवन करते हैं।

महत्यपि भवेत्प्रायः, कुसंगाद्दोषसंगमः।
कलावत्यपि जातोऽयं, कलंको विषवासतः।। 440।।

प्रायः कुसंग–वश महापुरुषों मे भी दोष आ जाते हैं। विष (गरल, जहर) के सम्पर्क–वश चन्द्रमा मे कलंक लग गया।

परित्यागः कुसंगस्य, कृतिनामपि दुष्करः।
अस्ति स्थितिः सुरागारे, यतः सुमनसामपि।। 441।।

महान् अथवा पुण्यात्मा व्यक्तियों के लिए भी कुसंग का परित्याग कभी–कभी कठिन हो जाता है। शोभनमन वाले देवों की स्थिति (निवास) सुरआगारे (स्वर्ग) मे है। फूलों की भी स्थिति (रहना) सुराआगारे (मदिरालय) मे रहती है।

निष्कृपा अपि भवति वल्लभा वित्तशालिनः।
जनार्दनोऽपि यज्जज्ञे, श्रीपतिर्जगतां प्रियः।। 442।।

करुणा रहित धन सम्पन्न व्यक्ति भी लोगों मे प्रिय हो जाते हैं। जनार्दन (अर्थात् दुष्ट जनों का विनाश करने वाले) भी श्री पति (लक्ष्मी के स्वामी) के रूप में संसार के प्रिय बन गये।

अपि प्रवयसां पुंसां, दुर्धरा ब्रह्मचारिता।
सरोजजन्मा किं नासीत्, स्थविरोऽपि प्रजापतिः?।।443।।

प्रौढ़ता प्राप्त व्यक्तियों के लिए भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना दुःसह हो जाता है। क्या वृद्ध ब्रह्मा जी कमल से उत्पन्न होने पर भी अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सके? अर्थात् नहीं कर पाये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न संस्तवेऽपि पुण्यानां, पापधीर्याति पापिनाम्।
नास्ता मधुपता भृङ्गैः, संगे सुमनसामपि।। 444।।

पुण्यात्मा व्यक्तियों की प्रशंसा करने पर भी पापी व्यक्तियों की पाप बुद्धि नहीं जाती है। फूलों का संसर्ग करने वाले भँवरों की रसलोलुपता समाप्त न हो पायी।

व्यापारो यादृशो यस्य, तस्मात्तादृक् फलागमः।
न स्नेहनाशिना चक्रे, किं दीपेनासितं कुलम्?।।445।।

जिस व्यक्ति का जैसा व्यवहार होगा उसको उसी प्रकार का परिणाम प्राप्त होता है। तैल के नाश हुए दीपक द्वारा क्या कुल कलंकित नहीं किया गया ?

खलानां खलता याति, स (न) सत्संगसृजामपि।
सर्वज्ञसंगिभिस्त्यक्ता, न द्विजिह्वै र्द्विजिव्हता।। 446।।

सज्जन व्यक्तियों का संग होने पर भी दुष्ट व्यक्तियों की दुष्टता नहीं जाती है। चन्दन वृक्ष का संग करने पर भी क्या सर्प अपनी गरलता को नही त्यागता है?

सार्धं हि धार्मिकैरेव, विरोधः पापिनां महान्।
विश्वेऽस्मिन् वहते वैरं, कलावत्येव यत्तमः।। 447।।

धार्मिक व्यक्तियों के साथ पापात्मा लोगों का महान् विरोध बन जाता है। इस संसार में अन्धकार चन्द्रमाँ के प्रति वैर सदैव बनाए हुए है।

क्वचिद्वस्तुविशेषे स्यात्, संगमो गुणदोषयोः।
सति दोषाकरत्वेऽपि, कलावत्त्वं न किं विधौ?।।448।।

कभी–कभी विशिष्ट वस्तु में गुण में दोष का संगम देखा जाता है। क्या दोषा (रात्रि) करने वाले चन्द्रमाँ में कलातत्त्व (कलावान् होना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिलक्षित नहीं होता है ? अर्थात् वह दोषाकर होने पर भी कलावान् कहलाता है।

धने सत्यपि तद्भोगो, नैवाभाग्यभृतां भवेत्।
यद्दिगम्बर एवासी,—दीश्वरोऽपि महानटः।। 449।।

अभाग्यशाली व्यक्ति धन होने पर भी उसका उपभोग नहीं कर सकते है। भगवान शंकर ईश्वर एव महानट होने पर भी दिगम्बर (दिशाए ही है अम्बर वस्त्र जिसका) ही बने रहें।

सखे ! दोषजुषां द्वेषः, स्वजनेऽपि प्रजायते।
भक्तेऽप्यभावस्तोषस्य, न किं ज्वरभृताममूत्?।।450।।

हे मित्र! दोषापन्न व्यक्तियों का अपने स्वजनों के प्रति द्वेष रहता है। क्या ज्वराक्रान्त को अपने आहार के प्रति अरुचि नहीं होती? अर्थात् वह रोगी व्यक्ति पथ्य के प्रति अरुचि प्रदर्शित करता है।

भवेद्विद्यागमोऽवश्यं, छात्रे गुरोर्धियां निधेः।
किं वाक्पतेर्न यानां, न वैबुध्यमजायत ?।। 451।।

ज्ञानधारी गुरुजन का अपने शिष्य में ज्ञान का आगम होता है। क्या बृहस्पति के शिष्यों की विद्वत्ता नहीं हुई ? अर्थात् बृहस्पति के शिष्यों मे विद्यागम हो गया।

ध्रुवं स्यान्मानतुंगानां, विपत्तिरपि संपदे।
करपीडावतोरासीत्, सौभाग्यं स्तनयोर्न किम्?।।452।।

अति सम्मानित व्यक्तियों को भी निश्चित ही कभी—कभी विपत्ति का अनुभव करना पड़ता है। क्या किसी के द्वारा कर मर्दित होना स्तनों का सौभाग्य नहीं है ?

मध्ये ध्वस्तधियामेव, स्थानं व्यसनवासिनाम्।
क्रीडन्ति जलजातान्त,—र्मधुपाः प्रतिवासरम्।। 453।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नष्ट बुद्धि वाले व्यक्तियों का स्थान दुर्व्यसन सम्पन्न व्यक्तियों के बीच में ही होता है। ऐसे लोग दुर्व्यसनी जन का साथ करते हैं। मधुप (भ्रमर) कमल के अन्दर ही प्रतिदिन रमण करते रहते हैं।

विद्वानास्तां तदावासे, वासोऽपि विबुधत्वकृत्।
द्विजागारे मुखे प्राप्ता, यद्रसज्ञा रसाप्यभूत्।। 454।।

विद्वान् पुरुष अपने स्थान पर ही रहे तो उसका गृहवास भी वैदुष्य को बढ़ाने वाला होता है। दाँत के मुख मे होने पर ही उसकी रसज्ञता परिलक्षित होती हैं।

प्रायः प्रवर्धते प्रीतिः, सखे ! सदृशसंपदाम्।
किं राज्ञा सह सौहार्द, बव्हासीन्न रसेशितुः ?।।455।।

है मित्र! समान सम्पदा वाले व्यक्तियों मे प्रायः परस्पर प्रीति की अभिवृद्धि होती है। क्या राजा का राजाओं के साथ अथवा समुद्र की रस पक्ष पाती चन्द्रमा के साथ प्रीति नहीं है ? अर्थात् इनमे परस्पर अति प्रीति है। (क्योंकि चन्द्रमा के बढ़ने के साथ समुद्र मे ज्वर आता है।)

ईशानां गुणनाशेऽपि, गुणख्यातिरनश्वरी।
यमध्वंस्यप विख्यातो, महादेवो महाव्रती।। 456।।

सर्व समर्थ व्यक्तियों के गुणों के नष्ट हो जाने पर भी उनकी कीर्ति अक्षुण्ण रहती है। यमराज अथवा कामदेव के नष्ट हो जाने पर भी महाव्रतधारी महादेव (श्री शंकर जी) जगत् प्रसिद्ध हैं।

साक्षरैः सममारब्धा,—मत्सराः स्युर्निरक्षराः।
वाग्देव्यां वहते वैरं, न किं गोविन्दगेहिनी?।।457।।

अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी अथवा पढ़े लिखे के साथ काम करते समय मत्सर (इर्ष्या) युक्त बन जाते हैं। क्या श्रीकृष्ण की पत्नी राधिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा विष्णु पत्नी लक्ष्मी का वाणी देवी सरस्वती के साथ वैर भाव नहीं है ? अर्थात् इनमें परस्पर (डाह) भाव रहता है।

वासदोषः सखेऽवश्यं, शुद्धात्मन्यपि जायते।
जाड्यं जडनिवासित्वाद्, द्विजराजेऽप्यभून्न किम्?।।458।।

हे मित्र! दोष युक्त स्थानों से शुद्धात्माजन में अवश्य दोष उत्पन्न हो जाते है। चन्द्रमाँ में जड़ सम्पर्क (जड़ीभूत तारकवृन्द के सहवास स्वरुप) के कारण क्या जड़ता (शीतलता) नहीं हुई ? अर्थात् चन्द्रमा सम्पर्क से शीतल हो गया।

न हृष्यन्त्यसितात्मानः, संपत्तौ सुकृतात्मनाम्।
मुद्रिते काकपाकानां, द्विजराजोदये दृशौ।। 459।।

कलुषित मन वाले व्यक्ति पुण्यात्माओं के वैभव को देखकर प्रसन्न नहीं होते है। चन्द्रमाँ के उदित होने पर काकशिशु की आँखे बन्द हो जाती है।

पापिनां पापिभिः साकं, संगः संगतिमंगति।
वयस्य ! पश्य मातंगैः, संगतान् मधुपानिमान्।।460।।

पापात्मा व्यक्तियों की पापीजनों के साथ संगति ही संगति बन जाती है। है मित्र! हाथियों के साथ मिले हुए इन भ्रमरों को देखो।

अनधीतवाङ्मयानां वक्रा भवति पद्धतिः।
यदश्रुतय एवेह, यान्ति जिह्मा दिवानिशम्।। 461।।

शास्त्राध्ययन से विमुख व्यक्ति कुटिलतापूर्ण होता है। इस संसार में सर्प अश्रुत (कान न होने से) दिन–रात कुटिल चाल चलता है।

धने स्वल्पेऽपि तुगांनां, धनित्वख्यातिरद्भुता।
ऐश्वर्यश्रुतिरेकस्मिन्, वृषभे वृषभेशितुः।। 462।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशाल हृदय वाले व्यक्तियों के धन की न्यूनता होने पर भी उनकी धनैश्वर्यता बड़ी विचित्र होती है। जैसे श्रेष्ठ बैल वाले किसान के एक ही श्रेष्ठ बैल होने पर उनकी ख्याति न्यून नहीं होती है।

अचेतनेऽपि प्रीति–प्रवृत्तिर्धनिनां ध्रुवम्।
किं स्थाणुना समं मैत्री, धनाधीशस्य नाऽभवत्?।।463।।

धनवान या ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों की अचेतन के साथ प्रेम करने की प्रवृत्ति निश्चय ही रहती हैं। क्या स्थाणु (भगवान शिव) के साथ धनाधीश् (कुबेर) की मित्रता नहीं हुई ? अर्थात् उनमें मैत्री भाव बना रहा।

रतिर्जडजुषां नीच,–मिलनेऽप्यतिशायिनी।
न किं गोपकराश्लेषात्, पद्मिनी प्रीतिमत्यभूत्?।।464।।

जड़ प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों की निम्नपुरुषों के साथ मित्रता होने पर परस्पर अत्यधिक प्रीति हो जाती है। क्या गोप (.ष्ण) के हाथ का सम्पर्क पाकर कमलिनी प्रीतिमति न हुई ? अर्थात् वह हस्त सम्पर्क–वश खिल उठी (प्रसन्न हुई)।

धत्ते धनवति प्रीतिं, सदोषेऽपि महाजनः।
व्यधान्मैत्रीं कुबेरेऽपि, धनाधीशे महेश्वरः।। 465।।

बड़े लोग धनवान् व्यक्ति में दोष होने पर भी उससे प्रीति रखते है। शंकरजी ने धन के स्वामी कुबेर से मित्रता कर ली।

अधनित्वे सति प्रायः, स्त्रीः कुरूपैति वेश्मनि।
दिग्वासाः प्राणिताधीशः, काली मेहे च गेहिनी।।466।।

प्रायः निर्धनता की स्थिति मे स्त्री घर में कुरूपा मानी जाती है। दिशा रूपी वस्त्र धारण करने वाले शंकर जी के घर मे गृहिणी कही जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महस्विनां महोहान्यै, मिलितः स्यात् खलः खलु।
द्विजिव्हदर्शनादासीत्, प्रदीपे दीप्तिमन्दता।। 467।।

निश्चित ही दुष्ट व्यक्ति के मिलने से तेजस्वी व्यक्ति के तेज की हानि होती है। सर्प के दर्शन से दीपक के प्रकाश मे मन्दता आ जाती है।

मृतिरास्तां प्रमीलाऽपि, प्रभूणां कृत्यहानये।
न किं कार्यनिषेधोऽभूत्, प्रसुप्ते पुरुषोत्तमे ?।।468।।

अपने स्वामी के कार्य हानि मे प्रमीला (अत्यन्त प्रिय) भी मृत सी (मरण तुल्य) हो गई। क्या पुरुषोत्तम (नारायण या विष्णु) के सो जाने पर (शयन करने पर) मांगलिक कार्यों का निषेध नहीं हो जाता है ? अर्थात् मांगलिक विवाह आदि कार्य नहीं होते हैं।

निर्धनोऽपि महान् प्रायो, महत्त्वख्यातिभाग् भवेत्।
कथितोऽनेकपः किं नो,—दरम्भरिरपि द्विपः?।।469।।

कभी–कभी धनहीन व्यक्ति (गरीब) प्रशंसा एवं ख्याति का पात्र बन जाता है। अपने उदर मात्र का ही भरण करने वाले हाथी की अनेक बार कई लोगों द्वारा प्रशंसा की गई है।

गृहस्थानोचिता पर्षत्, जायते महतामपि।
श्मशानवेश्मनः पार्श्वे, शिवा तिष्ठति सर्वदा।। 470।।

महान् व्यक्तियों की पारिवारिक स्थिति घर एवं स्थान के अनुरूप हो जाती है। शंकर के पास सदा शिवा बैठती है।

वसन् मूर्खेष्वमूर्खोऽपि, पशुरेवाभिधीयते।
जडजातासनो ब्रह्मा,—ऽप्यज एव मतः सताम्।। 471।।

मूर्ख व्यक्तियों के मध्य में निवास करता हुआ बुद्धिमान् व्यक्ति भी पशु समान कहा जाता है। कमलासन ब्रह्मा भी (जड़ कमल वसति के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण) सज्जनों के विचार में अज (बकरा) माना गया है। वैसे अज का अर्थ ब्रह्मा भी होता है (नजातः इति अजः)

श्यामात्मनि विशुद्धात्मा, संगतोऽनर्थसूचकः।
प्रादुर्भूतं न किं पुष्पं, नयने हन्ति सौष्ठवम्?।।472।।

पवित्र मन वाले व्यक्ति कलुषित मन वाले व्यक्ति के संग के कारण अनर्थकारी होता है। क्या खिला हुआ पुष्प कामिनी के नेत्रों के सौन्दर्य को नष्ट नहीं करता है ? अर्थात् करता है, क्योकि नेत्रों की तुलना कमल से की जाती है।

संवासिजनतुल्यं स्या,—द्वैदग्ध्यं महतामपि।
द्विजेशोऽपि जडात्माऽभू—द्यद् गोविन्दपदे वसन्।।473।।

महान् पुष्पों की विदग्धता (बुद्धिमत्ता) साथ में रहने वाले व्यक्तियों के समान हो जाती है। चन्द्रमाँ भी श्री गोविन्द पदाश्रित (आकाश आश्रित) होने के कारण जड़ात्मा हो गया।

दोष्मतामप्यसद्वस्तु, वस्तुतः सन्निरूप्यते।
रूपं स्म्यमिति प्राहु,—रनंगस्यापि यद्भुवः।। 474।।

दुर्गुण सम्पन्न व्यक्तियों की असत् वस्तु (अनुपयुक्त वस्तु) भी वास्तव में सत् (अच्छी) निरुपित की जाती हैं। अनंग (कामदेव) की सुन्दर आकृति न होने पर भी वह संसार में रम्य (सुन्दर) कहा जाता है।

संबन्धः सदृशामेव, प्रायशो दृश्यते दृढः।
अभवद्भैरवस्यैव, चण्डिका गृहिणी गृहे।। 475।।

समान प्रकृति वाले (समान स्वभाव या विचार वाले) व्यक्तियों का प्रेम—सम्बन्ध स्थायी होता है। भैरव का चण्डिका के मन्दिर मे निवास स्थायी हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्या निर्व्यसना एव, भवन्ति विदुषां सखे ! ।
विनेया असुरा एव, कवेः सन्ति सहस्त्रशः ।। 476 ।।

हे मित्र! विद्वान् मनुष्यों के शिष्य व्यसन रहित होते हैं। कवि के शिष्य (काव्य में वर्णित पात्र) विपुल मात्रा में (हजारों की संख्या में) प्रायः असुरा (मद्यपान न करने वाले) एवं विनम्र होते हैं।

निरक्षरोऽपि भूयोभि,–र्वित्तैर्गच्छति गौरवम् ।
गोपेन्द्रोऽप्यमवल्लक्ष्मी,–पतित्वात् पुरुषोत्तमः ।।477 ।।

निरक्षर व्यक्ति विपुल सम्पत्ति के फल–स्वरुप गौरव को प्राप्त कर लेता है। गोपों के स्वामी लक्ष्मी पति होने के कारण पुरुषोत्तम (मानवों मे श्रेष्ठ) कहे जाते हैं।

शीललीलासखं रूपं, विद्या विनयवाहिनी ।
वित्तं वितरणाधीनं, ध्रुवं धन्यस्य कस्यचित् ।। 478 ।।

निश्चय ही किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति मे ही विलासमय सच्चरित्रवान्रूप, विनयान्वित विद्या एवं दानशील सम्पत्ति (ये तीनों) एक साथ पाई जाती है।

संपत्तिः साहसं शीलं, सौभाग्यं संयमः शमः ।
संगतिः सह शास्त्रज्ञैः, सकाराः सप्त दुर्लभाः ।। 479 ।।

सम्पत्ति, साहस, शील, सौभाग्य, संयम, समता तथा शास्त्रज्ञ (ज्ञानी जन का सहवास) की संगति ये सात सकार वर्ण से प्रारम्भ होने वाले दिव्यगुणों का एक ही व्यक्ति में पाया जाना बहुत ही दुर्लभ है।

विवेको विनयो विद्या, वैराग्यं विभवो व्रतम् ।
विज्ञानं विश्ववाल्लभयं, फलं सुकृतवीरुधः ।। 480 ।।

विवेक, विनम्रता, विद्यागम, वैराग्य, वैभव, व्रत (नियमों का सम्यक्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालन) विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) एवं विश्ववल्लभता (सर्वप्रियता) ये सभी पुण्य रुपी लता के सुपुष्प परिगणित हैं।

यद्राज्यं न्यायसम्पन्नं, यच्छक्तिः शमशालिनी।
यौवनं शीलरम्यं य,—त्तत्दुग्धं शर्करान्वितम्।। 481।।

नीति सम्पन्न राज्य समता से परिपूर्ण शक्ति, शील युक्त यौवन ये तीनों शंकर– सम्मिश्रित दुग्ध के तुल्य कहे गये हैं।

यद्वक्ता धर्मशास्त्रज्ञो, यत्कविः सत्यभाषकः।
वल्लभो यद्विनीतात्मा, स शंखः क्षीरपूरितः।।482।।

धर्मशास्त्रों का परिपूर्ण ज्ञान रखने वाला वक्ता,, सत्य बोलने वाला यथार्थ एवं निरपेक्ष भाव से काव्य रचनाकार कवि, विनीत व्यक्ति या ये तीनों क्षीर से परिपूर्ण शंख (धवलता का सूचक) के समान माने जाते हैं।

स्थाने स्थितिर्मतिर्मान्या, रम्यं रूपं धनं घनम्।
बलं बहु वचो वर्यं, पुंसां पुण्यवतां भवेत्।। 483।।

पुण्यशाली व्यक्तियों को अपने स्थिर निवास का सेवन, सर्वमान्यबुद्धि, सुन्दर रूप, विपुल धन सम्पत्ति, अतुलबल एवं श्रेष्ठवाणी प्राप्त होती हैं।

सौजन्यं संगतिः सद्भिः, शान्तिरिन्द्रियसंयमः।
आत्मनिन्दा परश्लाघा, पन्थाः पुण्यवतामयम्।। 484।।

सज्जनों के साथ समागम, शान्ति (मानसिक परितोष) इन्द्रियों का निग्रह, स्वयं की निन्दा करने का स्वभाव एवं दूसरों की वास्तविक प्रशंसा (गुणानुकीर्तन) ये सब भाग्यशाली व्यक्ति के जीवन पथ (जीवन शैली) कहे गये हैं।

करे दानं हृदि ध्यानं, मुखे मौनं गृहे धनम्।
तीर्थे यानं गिरि ज्ञानं, मण्डनं महतामिदम्।। 485।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् व्यक्तियों के हाथ दान से, हृदय शोभा ध्यान से, मौन से मुखमण्डल, धन से गृह तीर्थस्थान में मांगलिक वाहन का सदुपयोग एवं वाणी ज्ञान से सुअलंकृत हुआ करती हैं।

धर्मे कृपा गुरौ ब्रह्म, देवे विगतरागता।
मित्रे प्रीतिर्नृपे नीतिः, सक्तुमध्ये लुठद् घृतम्।।486।।

धर्म में करुणाभाव, गुरु में ब्रह्मत्व, देव मे वीतरागता मित्र मे प्रीति एवं राजा मे नीति ये सब सक्तू (सिके हुए गेहूँ, जौ अथवा चने के चूर्ण) में विपुलमात्रा में सम्मिश्रित घी के समान कहे जाते हैं।

पूजाऽर्हतां गुरोः सेवा, सर्वज्ञवचसां श्रुतिः।
पात्रे दानं सतां संगः, फलं मनुजजन्मनः।। 487।।

अर्हत पूजा, गुरुजन की सुश्रुषा, सर्वज्ञ की वाणी का श्रवण, सुपात्रदान एवं सज्जन पुरुषों का संग ये सभी मानवजन्म के फल (अनिवार्य सुकर्म) कहे गये हैं।

विभवे सति सन्तोषः, संयमः सति यौवने।
पाण्डित्ये सति नम्रत्वं, हीरोऽयं कनकोपरि।। 488।।

ऐश्वर्यशाली होने पर भी सन्तोष, यौवन होने पर भी संयमशील बने रहना, पाण्डित्य होने पर भी विनम्रतापूर्वक रहना ये तीनों सोने के ऊपर जड़े हुए हीरे के समान (बहुमूल्य) माने जाते हैं।

अर्हन्नतिर्गुरुप्रीति,–र्विरतिर्निजयोषिति।
धर्मश्रुतिर्गुणासक्तिः, सद्यो यच्छति निर्वृतिम्।। 489।।

अरिहन्त के चरणों में नमन, गुरुजनों के प्रति प्रीति, स्वभार्या में विरति (आसक्ति का अभाव), धर्म श्रवण एवं गुणों के प्रति आसक्ति ये शीघ्र ही व्यक्ति को पूर्णता की ओर ले जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाने शक्तिः श्रुते भक्ति,–र्गुरूपास्तिर्मुणे रतिः।
दमे मतिर्दयावृत्तिः, षडमी सुकृतांकुराः।। 490।।

दान में शक्ति (दान देने की प्रबल भावना) शास्त्र श्रवण में भक्ति अथवा प्रीति, गुरु में उपासना, सद्गुणों में अनुराग, इन्द्रिय संयम मे बुद्धिलगाना, प्राणिमात्र के प्रति दया के भाव, ये छः पुण्यरूपी बीज के अंकुर कहे जाते हैं।

जैनो धर्मः कुले जन्म, शुभ्रा कीर्तिः शुभा मतिः।
गुणे रागः श्रियां त्यागः, पूर्वपुण्यैरवाप्यते।। 491।।

जैन धर्म का पालन, सत्कुल में जन्म, धवल यश, कल्याणमयबुद्धि, गुणार्जन में आसक्ति एवं धन या, लक्ष्मी का दान करने की प्रवृत्ति से सभी दिव्यगुण पूर्वजन्म में किये हुए पुण्यों के परिणाम–स्वरूप मनुष्य को प्राप्त होते हैं।

देवो दलितरागारि,–र्गुरूस्त्यक्तपरिग्रहः।
धर्मः प्रगुणकारूण्यो, मुक्तिमूलमिदं मतम्।। 492।।

राग आदि का नाश करने वाले देव, परिग्रह का त्याग करने वाले गुरु, प्रकृष्ट करुणामय धर्म ये तीनों मुक्ति के मूल माने जाते हैं।

आरोग्यं दत्तसौभाग्यं, जीवितं कीर्तिपावितम्।
भोगान् सुभगसंयोगान्, लभन्ते धर्मकर्मठाः।। 493।।

सौभाग्यपूर्ण आरोग्य, यश से पवित्र जीवन (यशमय जीवन) संयोग–वश प्राप्त भोगों का उपभोग ये तीनों धर्म मे कर्मठ व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं।

सन्ततिः शुद्धसौजन्या, विभूतिर्भोगभासुरा।
विद्या विनयविख्याता, फलं धर्मतरोरिदम्।। 492।।

पवित्र चरित्र रूपी सौभाग्य–सम्पन्न सन्तान, सत् उपभोग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित वैभव एवं विनय से सुप्रसिद्ध विद्यागम ये त्रिपुट धर्म रूपी वृक्ष के सुन्दर एवं सुस्वादु फल कहे गये हैं।

दानं दहति दौर्गत्यं, शीलं सृजति संपदम्।
तपस्तनोति तेजांसि, भावो भवति भूतये।। 495।।

दान दुर्गति को जलाता है। शील से सम्पत्ति प्राप्त होती है। तप करने से मानव का तेज विस्तृत होता है तथा निर्मल भावों से ऐश्वर्य प्राप्त होता हैं।

दीर्घमायुयशश्चारु, शुद्धिं बुद्धिं शुभां श्रियम्।
प्राज्यं राज्यं सुखं शश्व,–द्दत्ते धर्मसुरद्रुमः।। 496।।

धर्मरूपी कल्पवृक्ष लम्बी उम्र, शुभ्रकीर्ति, पवित्र या स्वच्छ विमलबुद्धि, कल्याणकारी धन, विशाल राज्य एवं चिरस्थायी सुख प्रदान करता है।

घटाः कामघटाः सर्वे, धेनवः कामधेनवः।
वृक्षाः स्वर्गसदां वृक्षाः, सदा सुकृतशालिनाम्।। 497।।

हमेशा पुण्यवान् व्यक्तियों के लिए सभी घट कामघट (मनोकामनापूर्ण करने वाले) बन जाते हैं सभी गाय कामधेनु बन जाती हैं। सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान मनोकामना पूर्ण करने वाले बन जाते हैं।

सुवर्णमणिराजिष्णुः, सर्वालंकारशोभना ।
सूक्तरत्नावलिरियं, नानाभावविभासुरा।। 498।।

सूक्त रत्नावली शोभन वर्ण (अक्षर) समुदाय रूपी रत्नों से प्रकाशवती है, और सभी अलंकारों से अलंकृत तथा विविध भावों (सुविचारों अथवा उपदेशात्मक विचारों से परिपूर्ण) से विशिष्ट शोभाशालिनी बन गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतिततिचित्तचमत्कृति,–कारिगुणा कान्तकान्तिकमनीया।
नयनिपुणवचनरचना, सुन्दरतरवृत्तभावमध्यमणिः।।499।।

रचनाश्रेणी में चित्त को चमत्कृत करने वाली सुष्ठु गुणों से सम्पन्न एवं सुंदर कान्ति से कमनीय तथा नय से निपुण शब्दावली से विरचित यह रचना (सूक्तरत्नावली) अत्यन्त सुंदर ग्रन्थमाला की मध्यमणी के समान विलसित है।

वर्षे मुनियुगनरपति,–मिते तसरगच्छजलधिशशिसदृशैः।
श्री विजयसेनसूरि,–द्विरदैर्निरमायि निर्मायैः।। 500।।

इस सूक्ता–रत्नावली ग्रन्थ की रचना वि.सं. 1647 में तपागच्छरूपी सागर में चन्द्रमाँ के समान धवल कान्ति वाले, माया रहित, श्रेष्ठ हाथी ऐरावत के समान श्री विजयसेनसूरिजी द्वारा सम्पन्न की गई है।

कण्ठपीठे लुठत्येषा, यदीये गुणहारिणी।
मनांसि मोहयेन्नूनं, स सभाहरिणीदृशाम्।। 501।।

गुणों द्वारा पाठकों के मन को हरणकरने वाली यह रचना जिसके कण्ठप्रदेश मे रमण करती है। वह व्यक्ति निश्चय ही सभा को मृगनयनी के नेत्रों के समान सभा में विराजित विद्वत् जनों के मानस को संमोहित कर देता है।

यस्याम्रमञ्जरीवैषा, तिष्ठत्यामोददा मुखे।
कामोत्सवाय जायेत, कोकिलास्ये व तस्य वाक्।।502।।

आमोद प्रदान करने वाली आम्रमंजरी के समान यह रचना जिस विद्वान् व्यक्ति के मुख में विराजित हो जाती है, उसकी वाणी कोयल के मुख के समान वसन्तोत्सव के समान आनन्ददायी बन जाती है। जिस प्रकार वसन्तागम पर कोयल की मधुरध्वनि उत्सव को द्विगुणित कर देती है उसी प्रकार सूक्तरत्नावली से मण्डित मुखवाला सुकवि श्रोताओं के आन्दोत्सव का हेतु बन जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि नीतिमृगीनेत्रा,– मात्मसात्कर्तुमीहसे।
निधेहि तदिमां कण्ठे, संवननौषधीमिव।। 503।।

हे सुजनो! यदि इस हरिणाक्षि के नेत्रों के समान नीति सम्पन्न सुक्तरत्नावली को आत्मसात् (हृदय में निविष्ट करना) चाहते हो तो संजीवनी औषध के समान जीवनदात्री इस सूक्तरत्नमाला को अपने कण्ठ प्रदेश मे धारण करें।

चिरं चित्तचमत्कारि,–सूक्तरत्नामनोज्ञया।
कण्ठस्थयाऽनया नूनं, वक्ता स्यात् सभ्यवल्लभः।।504।।

चिरकाल तक मन को चमत्कार से प्रतिपूरित करने वाली सुंदर सूक्तरत्नावली को कण्ठस्थ (गले में धारण) करके वक्ता निश्चित ही सभा का वल्लभ बन सकता है।

स्याद्विशारदवृन्दान्तः, स्थातुं वक्तुं च चेन्मनः।
तदा सुकृतियोग्यैषा, कण्ठपीठे निधीयताम्।। 505।।

यदि आपका मन विद्वानों के समूह के अन्तःकरण में रहने का इच्छुक हो और उस सभा मे बोलना चाहता है तो सुकार्य के समान यह रचना कण्ठ में धारण की जावे।

एतस्याः सूक्तमप्येकं, नरः कण्ठे बिभर्ति यः।
लोकानुल्लासयेत्सोऽपि, चकोरानिव चन्द्रमाः।। 506।।

जो व्यक्ति इस सूक्तरत्नावली के एक भी सूक्त को अपने कण्ठ मे धारण कर लेता है वह व्यक्ति चकोर को आनन्दित करने वाले चन्द्रमा के समान लोगों के मन को उल्लास से परिपूर्ण कर सकता है।

भूरिभावावभासैक, – दिनेशद्युतितुल्यया।
अन्या श्लिष्टकण्ठः स्यात्, पुमर्थेषु समर्थधीः।। 507।।

सूर्य के प्रकाश समान विविध भावों (विचारो या उपदेशों) से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासित एवं कण्ठ में विराजित इस सूक्तरत्नावली द्वारा मनुष्य अर्थ विश्लेषण (द्रव्योपार्जन) में समर्थ बुद्धिवाला हो सकता है।

अगाधरसनिष्यन्द,—धारिणी पापवारिणी।
एषा पुनातु गंगेव, सर्व सर्वज्ञवल्लभा।। 508।।

गहनरस (काव्य रस या आनन्द) निर्झर धारण करने वाली तथा पापों से बचाने वाली सर्व विद्वानों की प्रिया यह सूक्तरत्नावली गंगा नदी के समान सभी को पवित्र करे।

अलंकरोति यत्कण्ठ,—पीठे मेषा मनोरमा।
तानभ्यायान्ति सोत्कण्ठं, सर्वाः स्वयंवराः श्रियः।।509।।

यह मन को प्रसन्न करने वाली सूक्तरत्नावली जिस व्यक्ति के कण्ठ को सुशोभित करती है। ऐसे व्यक्तियों के सम्मुख स्वयम् वरण करने वाली लक्ष्मी उत्कंठित होकर समुपस्थित हो जाती है।

नानावाङ्मयमाणिक्य,—परीक्षणविचक्षणैः।
श्रीलाभविजयाह्वानै,—रशोधि विबुधैरियम्।। 510।।

अनेक काव्य ग्रन्थ रुपी माणिक्य के परीक्षण में विचक्षण विद्वत्वर्य श्री लाभविजयसूरि द्वारा इस ग्रन्थका शोधन किया जाता है। (श्री लाभ विजय सूरि म.सा. ने इस ग्रंथ की शोध की हैं।)

यावदम्बरूहां बन्धु,—र्गाहते गगनांगणम्।
कण्ठे स्थिता तावदसौ, चिरं सौभाग्यमश्नुताम्।।511।।

जब तक आकाश में कमल के बन्धु (सूर्य) विराजमान है तब तक यह कण्ठ प्रदेश में विराजित सूक्तरत्नावली चिरकाल पर्यन्त सौभाग्य (सुन्दर कीर्ति) का आस्वादन करती रहें। विद्वत् जन इसके माध्यम से विपुल कीर्ति वाले चिरकाल तक बने रहे ऐसी कामना हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दनमुनि कृत आलोचना

1. स निष्कलंकं श्रामण्यं चरित्वा मूलतोऽपि हि।
आयुः पर्यन्त समये व्यधादाराधनामिति ॥1॥

अर्थ– उन्होंनें अर्थात् नन्दनमुनि ने जीवन पर्यन्त मुनिधर्म का पूर्णतः निष्कलंक रुप से पालन करके जीवन के अन्तिम समय में आराधना अर्थात् समाधिमरण स्वीकार किया।

2. ज्ञानाचारोष्टधा प्रोक्तो यः काल–विनयादिकः ।
तत्र में कोऽप्यतिचारो योऽभून्निन्दामि तं त्रिधा ॥2॥

काल विनयादि जो आठ प्रकार के ज्ञान के अतिचार कहे गये हैं उसमें जो कोई भी अतिचार या दोष लगे हों, उसकी मैं त्रिविध रूप से निन्दा करता हूं।

3. यः प्रोक्तो दर्शनाचारोष्टधा निःशङ्कितादिकः ।
तत्र में योऽतिचारोऽभूत् त्रिधाऽपि व्युत्सृजामि तम् ॥3॥

निःशकलंकत्व आदि आठ प्रकार के जो दर्शनाचार कहे गये हैं उनमें मुझे जो कोई भी अतिचार या दोष लगे हो, उनका भी मैं त्रिविध रूप से परित्याग करता हूं।

4. या कृता प्राणिनां हिंसा सूक्ष्म वा बादराऽपि वा ।
मोहाद् वा लोभतो वाऽपि व्युत्सृजामि त्रिधाऽपि ताम् ॥4॥

मोह अथवा लोभ वश सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणियों की जो भी हिंसा हुई हो, उसकी भी मैं त्रिविध रूप से परित्याग करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. हास्य–भी क्रोध लोभाधैर्यन्मृषा भाषितं मया
तत् सर्वमपि निन्दामि प्रायश्चित्तं चरामि च ॥5॥

हास्य, भय, क्रोध, लोभ आदि के वश मेरे द्वारा जो भी मिथ्याभाषण किया गया उसकी भी मैं निन्दा करता हूं और उसका प्रायश्चित करता हूं।

6. अल्पंभूरि च यत् क्वाऽपि परद्रव्यमदत्तकम् ।
आत्तं रागादथ द्वेषात् तत् सर्वं व्युत्सृजाम्यहम् ॥6॥

राग द्वेष से जो कोई भी कम अधिक मात्रा में अदत्त परद्रव्य ग्रहण किया हो उसका भी मैं परित्याग करता हूं।

7. तैरश्चं मानुषं दिव्यं मैथुनं मयका पुरा
यत् कृतं त्रिविधेनापि त्रिविध व्युत्सृजामि तत् ॥7॥

तिर्यंच, मनुष्य और देव योनियों में मेरे द्वारा जो पहले मैथुन कर्म किया उसका भी त्रिविध – त्रिविध रुप (तीन करण और तीन योग) से त्याग करता हूं।

8. बहुधा यो धन धान्य पश्वादीनां परिग्रहः ।
लोभ दोषान्मयाऽकारि व्युत्सृजामि त्रिधापि तम् ॥8॥

लोभ के दोष से जो बहुत प्रकार के धन धान्य पशु आदि का मेरे द्वारा परिग्रहण हुआ उसका भी मैं त्रिविध रुप से विसर्जन करता हूं।

9. पुत्रो कलत्रो मित्रो च बन्धौ धान्यो धने गृहे ।
अन्येष्वपि ममत्वं यत् तत् सर्वं व्युत्सृजाम्यहं ॥9॥

पुत्र, स्त्री, मित्र, बन्धु, धन–धान्य, घर तथा अन्य वस्तुओं पर जो मेरी ममत्व वृत्ति रही है उसका भी मैं विसर्जन करता हूं।

10. इन्द्रियैरभिभूतेन य आहारश्चतुविधः ।
मया रात्रावुपाभोजि निन्दामि तमपि त्रिधा ॥10॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियों के वशीभूत होकर मैने रात्रि में जो चारों प्रकार के आहार का सेवन किया उसकी मैं त्रिविध रूप से निन्दा करता हूं।

11. क्रोधो मानो माया लोभो रागो द्वेषो कलिस्तथा
पैशुन्यं पर निर्वादोऽभ्याख्यानमपरं च यत् ॥11॥

मेरे द्वारा क्रोध, मान माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, चुगली, परनिंदा या दूसरों पर मिथ्यारोपण आदि रुप तथा

12. चारित्राचारचाविषयं दुष्टचरितं मया ।
तदहं त्रिविधेनापि व्युत्सृजामि समन्ततः ॥12॥

चारित्रा चार विषयक जो दुष्ट आचरण किया गया है उन सबका भी मैं पूर्ण रुप से मन वचन कर्म से त्याग करता हूं।

13. यस्तपः स्वतिचारोऽभून्मे ब्राह्याभ्यन्तरेषु च ।
त्रिविधं त्रिविधेनापि बिन्दामि तमहं खलु ॥13॥

बाह्य एवं अभ्यन्तर तप में जो अतिचार (दोष) मुझको लगे हैं उनकी तीन करण एवं तीन योग से निन्दा करता हूं।

14. धर्मानुष्ठानविषयं यद् वीर्यं गोपितं मया ।
वीर्याचारातिचारं च निन्दामि तमपि त्रिधा ॥14॥

शक्ति होते हुए भी धर्मानुष्ठान के विषय में मेरे द्वारा जो शक्ति का गोपन किया गया उस वीर्यातिचार की भी मैं तीन योग से निन्दा करता हूं।

15. हतो दुरुक्तश्च मया यो यस्याऽहारि किञ्चन ।
यस्यापाकारि किञ्चद्वा मम क्षाम्यतु सोऽखिलः ॥15॥

मेरे द्वारा कहे गये दुर्वचन से किसी का किञ्चित भी हृदय दुखित हुआ हो अथवा तिरस्कार हुआ हो, वे सभी मुझे क्षमा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16. यश्च मित्राममित्रायो वा स्वजनोऽरिजनोऽपि च ।
सर्व क्षाम्यतु मे सर्वं सर्वेष्वपि समोस्म्यहम् ॥16॥

जो मित्र और शत्रु तथा स्वजन अथवा परिजन है वे सभी मुझको क्षमा करें। उन सभी के प्रति मेरा समभाव रहे।

17. तिर्यक्त्वे सति तिर्यञ्चो, नारकत्वे च नारकाः ।
अमरा अमरत्वे च, मानुषत्वे च मानुषाः ॥17॥

तिर्यञ्च गति में तिर्यञ्चो को नारक गति में नारको को और देवगति में देवताओं को और मनुष्यगति में मनुष्यों को

18. ये मया स्थापिता दुःखे सर्वेक्षामयन्तु ते मम ।
क्षाम्याम्यहमपि तेषां मैत्री सर्वेषु मे खलु ॥18॥

मेरे द्वारा जो भी दुख दिया गया हो वे सभी मुझको क्षमा करें मैं भी उनको क्षमा करता हूं। मैं निश्चय से सभी पर मैत्री भाव रखता हूं।

19. जीवितं यौवनं लक्ष्मी रुपं प्रियसमागमः ।
चलं सर्वमिदं वात्यानर्तिताब्धितरङ्ग वत् ॥19॥

जीवन, यौवन, लक्ष्मी, सौन्दर्य और प्रिय का समागम ये सभी वायु और समुद्र की तरंग के समान चंचल है।

20. व्याधिजन्मजरामृत्युग्रस्तानां प्राणिनामिह ।
विना जिनोदितं धर्मं शरणं कोऽपि नापरः ॥20॥

जन्म, मृत्यु , व्याधि और वृद्धावस्था से ग्रस्त प्राणियों को जिनेश्वर द्वारा कथित धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरणभूत नहीं है।

21. सर्वेऽपि जीवाः स्वजनाजाताः परजनाश्च ते ।
विदधीत प्रतिबन्धं तेषु जो को हि मनागपि ॥21॥

स्वजन परिजन आदि जो सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, वो मृत्यु को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त होते ही हैं, उन पर कौन किञ्चित् मात्र भी प्रतिबन्ध लगा सकता है, अर्थात् मृत्यु को रोक सकता है।

22. एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते
सुखान्यनुभवत्येको, दुखान्यपि स एव हि ॥22॥

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है वह सुख का अनुभव भी अकेला ही करता है और दुख का अनुभव भी अकेला ही करता है।

23. अन्यद् वपुरिदं तावदन्यद् धान्य धनादिकम् ।
बन्धवोऽन्येऽन्यश्च जीवो वृथा मुह्यति बालिशः ॥23॥

जिस प्रकार धन धान्य आदि अन्य है उसी प्रकार यह शरीर भी अन्य है, बन्धव भी अन्य है। मूर्ख जीव व्यर्थ ही उन पर मोह करता है।

24. वसा–रुधिर–मांसाऽस्थि–यकृद्–विण्मूत्रापूरिते ।
वपुष्य शुचिनिलये मूर्च्छां कुर्वीतः कः सुधीः ॥24॥

यह शरीर, वसा, रुधिर, मांस, अस्थि, यकृत्, विष्ठा मूत्र आदि से भरा हुआ अशुचि का भण्डार है। ऐसे शरीर पर कौन ज्ञानी पुरुष मोह करेगा॥

25. अवक्रयात्तवेश्मेव मोक्तव्य मचिरादपि ।
लालितं पालितं वाऽपि विनश्वरमिदं वपुः ॥25॥

चाहे इस शरीर का कितना ही पालन पोषण किया जाये, यह तो विनाशशील है, वस्तुतः यह अनादर के योग्य ही है अतः यथाशीघ्र इससे मुक्त होने का प्रयास करना चाहिये।

26. धीरेण कातरेणापि मर्त्तव्यं खलु देहिना ।
यन्म्रियेत तथा धीमान् न म्रियेत यथा पुनः ॥26॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धीर और कायर दोनों ही व्यक्ति निश्चित मृत्यु को प्राप्त होते हैं किन्तु धीर व्यक्ति इस प्रकार मरण को प्राप्त करता है कि, जिससे पुनः न मरना पड़े।

27. अर्हन्तो मम शरणं, शरणं सिद्ध साधवः ।
उदीरितः केवलिभिर्धर्मः शरणमुच्चकैः ॥27॥

मुझको अरिहन्त का शरण, सिद्ध का शरण, साधु का शरण और केवलि भगवान् द्वारा कथित धर्म का शरण – ऐसे श्रेष्ठतम शरण प्राप्त हो।

28. जिनधर्मो मम माता गुरुस्तातोऽथ सोदराः ।
साधवः साधर्मिकाश्च बन्धवोऽन्यत् तु जालवत् ॥28॥

जिनधर्म मेरी माता है, गुरु पिता है, साधुजन सदोहर है और साधर्मिक जन बन्धुवत है किन्तु अन्य परिजन तो जाल के समान है अर्थात् मोह रुपी बन्धन में डालने वाले हैं।

29. ऋषभादींस्तीर्थकरान् नमस्याम्यखिलानपि ।
भरतैरावत विदेहार्हतोऽपि नमाम्यहम् ॥29॥

मैं ऋषभ आदि भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र के सभी तीर्थकरों को नमस्कार करता हूं।

30. तीर्थकृद्भ्यो नमस्कारो देहभाजां भवच्छिदे ।
भवति क्रियमाणः सन् बोधिलाभाय चौच्चकैः ॥30॥

तीर्थंकरों को किया गया नमस्कार संसार–परिभ्रमण का नाश करता है और उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करने पर श्रेष्ठ बोधिलाभ की प्राप्ति होती है।

31. सिद्धेभ्यश्च नमस्कारं भगवद्भ्यः करोम्यहम् ।
कर्मेन्धोऽदाहि यैर्ध्यानाग्निना भव सहस्रजम् ॥31॥

परम ऐश्वर्य वाले सिद्धपरमात्मा, जिन्होनें हजारों भवों के संचित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मरूपी ईन्धन को ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा जला दिया है, उनको मैं नमस्कार करता हूं।

32. आचार्येभ्यः पञ्चविद्याऽऽचारेभ्यः नमो नमः।
यैधार्यते प्रवचनं भवच्छेदे सदोद्यतैः ॥32॥

जो प्रवचन को धारण करते हैं, भव का उच्छेद करने में उद्यत रहते हैं, ऐसे पंचाचार के पालक आचार्य को मैं नमस्कार करता हूं।

33. श्रुतं बिभ्रति ये सर्वं शिष्येभ्यो व्याहरन्ति च।
नमस्तेभ्यो महात्मभ्य उपाध्यायेभ्य उच्चकैः ॥33॥

जो श्रुत को धारण करते हैं और उसे सभी शिष्यों को प्रदान करते हैं, ऐसे उपाध्याय को मैं श्रेष्ठभावपूर्वक नमस्कार करता हूं।

34. शीलव्रतसनाथेभ्यः साधुभ्यश्च नमो नमः।
भवलक्षसन्निबद्धं पापं निर्नाशयन्ति ये ॥34॥

जो भव को पार करने के लक्ष्य से युक्त हैं और पाप का नाश करते हैं ऐसे शीलव्रत के धारी मुनिजनों को मैं नमस्कार करता हूं।

35. सावद्यं योगमुपधिं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
यावज्जीवं त्रिविधेन त्रिविधं व्युत्सृजाम्यहम् ॥35॥

मैं सावद्य व्यापार अर्थात् हिसांदि पाप प्रवृत्तियों का, वस्त्र आदि मुनि जीवन की उपासना रुप बाह्य परिग्रह का तथा राग द्वेष रूप आंतरिक परिग्रह का तीन करण और तीन योग से विसर्जन करता हूं।

36. चतुर्विधाहारमपि यावज्जीवं त्याजाम्यहमं।
उच्छवासे चरमे देहमपि हि व्युत्सृजाम्यहम् ॥36॥

मैं चार प्रकार के आहार का यावज्जीवन त्याग करता हूं तथा अंतिम श्वास पूर्ण होने पर देह का भी विसर्जन करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

37. दुष्कर्मगर्हणां जन्तुक्षामणां भावनामपि ।
चतुःशरणं च नमस्कारं चानशनं तथा ॥37॥

दुष्कर्मो की निन्दा सभी जीवों के प्रति क्षमाभाव, चार शरण का स्वीकार पंचपरमेष्ठि को नमस्कार, अनशन व्रत ग्रहण

38. एवमाराधनां षोढा स कृ त्वा नन्दनो मुनिः ।
धर्माचार्यानक्षमयत् साधून् साध्वींश्च सर्वतः ॥38॥

और सभी धर्माचार्यो एवं साधु साध्वियों से क्षमापना कर नन्दन मुनि ने ऐसी छः प्रकार की आराधना की।

39. एवमाराधना षोढा कर्तव्या शयने सदा ।
आयुः पर्यन्त समये विशेषाद् भवभीरुभिः ॥39॥

यह छः प्रकार की आराधना हमेशा शयन के समय भी करना चाहिये किन्तु आयु के अन्त समय में तो संसार से भयभीत जीवों को विशेष रुप से करना चाहिए।

40. नित्यमेव सुधीः साम्यश्रद्धासंशुद्ध मानसः ।
क्षणभङ्गुर संसारे कुर्यादाराधनामिति ॥40॥

क्षणभङ्गुर संसार में ज्ञानीजन श्रद्धापूर्वक एवं शुद्ध मन से नित्य ही ऐसी आराधना करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राच्य विद्यापीठ : एक परिचय

डॉ. सागरमल जैन पारमार्थिक शिक्षण न्यास द्वारा सन् 1997 से संचालित प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर आगरा-मुम्बई राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य भारतीय प्राच्य विद्याओं के उच्च स्तरीय अध्ययन, प्रशिक्षण एवं शोधकार्य के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को पुन: प्रतिष्ठित करना है।

इस विद्यापीठ में जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म आदि के लगभग 10,000 दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त 700 हस्त लिखित पाण्डुलिपियाँ है। यहाँ 40 पत्र-पत्रिकाएँ भी नियमित आती है।

इस परिसर में साधु-साध्वियों, शोधार्थियों और मुमुक्षुजनों के लिए अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ निवास, भोजन आदि की भी उत्तम व्यवस्था है।

शोधकार्यों के मार्गदर्शन एवं शिक्षण हेतु डॉ. सागरमलजी जैन का सतत् सांनिध्य प्राप्त है।

इसे विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा शोध संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वीजी श्री रुचिदर्शनाश्रीजी म.सा. : परिचय रेखा

1	जन्म नाम	- कु. रिंकु ओरा
2	माता	- श्रीमती प्रेमलता ओरा
3	पिता	- श्रीमान् रमेशचन्द्र जी ओरा
4	जन्म दिनांक	- 1 मार्च 1977
5	जन्म स्थान	- टोंकखुर्द, जिला देवास (म.प्र.)
6	व्यावहारिक शिक्षा	- बी.कॉम.
7	वैराग्य का कारण	- धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से एवं गुरुणी जी म. की प्रेरणा।
8	दीक्षा तिथि	- 5 मार्च 2003
9	दीक्षा स्थान	- डीसा (गुजरात)
10	दीक्षा गुरु	- पू. शासन सम्राट, सुविशाल गच्छाधिपति, राष्ट्रसंत आचार्य श्रीमद् विजयजयन्त सेन सूरीश्वरजी म. 'मधुकर'
11	गुरुणी जी	- मालवमणि पू. सुसाध्वीजी श्री स्वयंप्रभा श्रीजी म.सा. एवं साध्वीजी श्री डॉ. प्रीतिदर्शनाश्रीजी म.सा.
12	शिक्षा गुरु	- डॉ. सागरमलजी जैन, निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)
13	धार्मिक अध्ययन	- कर्मग्रन्थ, दशवैकालिक सूत्र, ज्ञानसार, सिंदूर प्रकर, पंच प्रतिक्रमण, जैन दर्शन एवं एम.ए. - जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म एवं दर्शन।
14	स्वभाव	- विनम्र, सरल एवं सहज स्वभावी, सेवाभावी।
15	रुचि	- धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, तपस्या, तत्त्वचर्चा, धार्मिक अध्ययन एवं लेखन। भविष्य में आपसे काफी अपेक्षाएं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org
Printed at Akrati Offset, UJJAIN Ph. 0734-2561720, 9827677780